अंक 285 वर्ष 58

# भाषा

जुलाई–अगस्त 2019

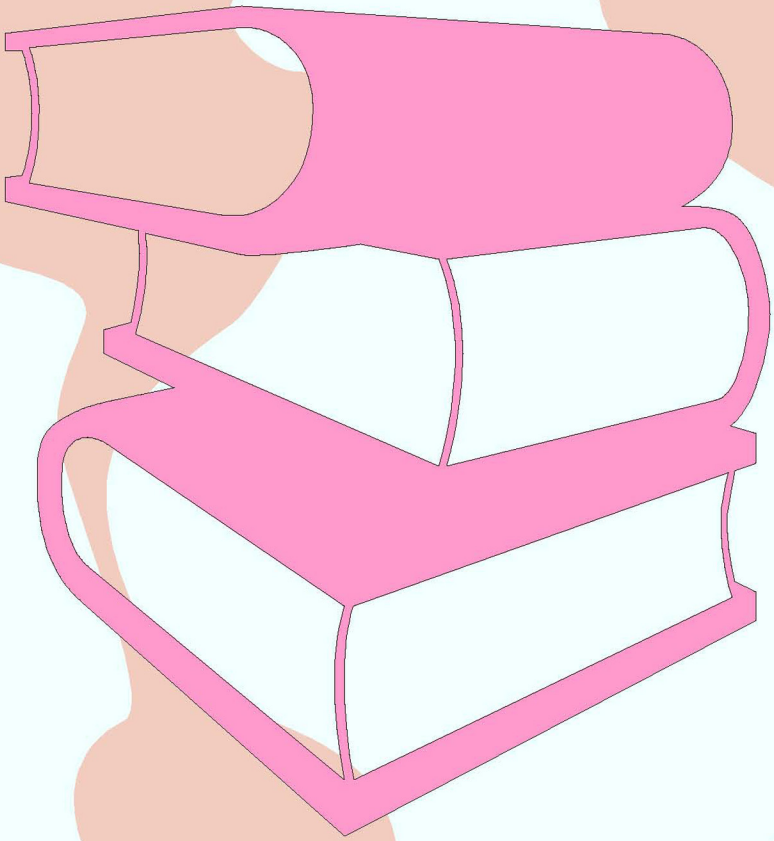

सत्यमेव जयते

स्वच्छ भारत
एक कदम स्वच्छता की ओर

केंद्रीय हिंदी निदेशालय
भारत सरकार

Skill India

# भाषा (द्वैमासिक)

## लेखकों से अनुरोध

1. ***भाषा*** में छपने के लिए भेजी जाने वाली सामग्री यथासंभव सरल और सुबोध होनी चाहिए। रचनाएँ प्रायः टंकित रूप में भेजी जाएँ। हस्तलिखित सामग्री यदि भेजी जाए तो वह सुपाठ्य, बोधगम्य तथा सुंदर लिखावट में होनी अपेक्षित है। रचना की मूलप्रति ही भेजें। फोटोप्रति स्वीकार नहीं की जाएगी।

2. लेख आदि सामान्यतः फुल स्केप आकार के दस टंकित पृष्ठों से अधिक नहीं होने चाहिए और हाशिया छोड़कर एक ओर ही टाइप किए जाने चाहिए।

3. अनुवाद तथा लिप्यंतरण के साथ मूल लेखक की अनुमति भेजना अनिवार्य है। इससे रचना पर निर्णय लेने में हमें सुविधा होगी। मूल कविता का लिप्यंतरण टंकित होने पर उसकी वर्तनी संबंधी त्रुटियाँ प्रायः नहीं होंगी, अतः टंकित लिप्यंतरण ही अपेक्षित है। रचना में अपना नाम और पता हिंदी के साथ–साथ अंग्रेजी में भी देने का कष्ट करें।

4. सामग्री के प्रकाशन विषय में संपादक का निर्णय अंतिम माना जाएगा।

5. रचनाओं की अस्वीकृति के संबंध में अलग से कोई पत्राचार कर पाना हमारे लिए संभव नहीं है, अतः रचनाओं के साथ डाक टिकट लगा लिफाफा, पोस्टकार्ड आदि न भेंजे। इन पर कोई कार्रवाई नहीं की जाएगी।

6. अस्वीकृत रचनाएँ न लौटा पाने की विवशता/असमर्थता है। कृपया रचना प्रेषित करते समय इसकी प्रति अपने पास अवश्य रख लें।

7. भाषा में केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा स्वीकृत मानक हिंदी वर्तनी का प्रयोग किया जाता है। अतः रचनाएँ इसी वर्तनी के अनुसार टाइप करवाकर भेजी जाएँ।

8. समीक्षार्थ पुस्तकों की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए।


### संपादकीय कार्यालय

संपादक भाषा, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, पश्चिमी खंड–7, रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली–110066

सत्यमेव जयते

# भाषा

जुलाई–अगस्त 2019

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनुमोदित पत्रिका (क्रमांक–16)

**अध्यक्ष, परामर्श एवं संपादन मंडल**
प्रोफेसर अवनीश कुमार

**परामर्श मंडल**

श्रीमती चित्रा मुद्गल
डॉ. गंगा प्रसाद विमल
डॉ. नरेंद्र मोहन
प्रो. श्याम आर. असोलेकर
श्री राहुल देव
प्रो. एम. वेंकटेश्वर
डॉ. मिलन रानी जमातिया

**संपादक**
डॉ. राकेश कुमार

**सह–संपादक**
श्रीमती अर्चना श्रीवास्तव

**प्रूफ रीडर**
इंदु भंडारी

**कार्यालयीन व्यवस्था**
सेवा सिंह

**केंद्रीय हिंदी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग,**
**मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार**

**ISSN 0523-1418**
भाषा (द्वैमासिक)
वर्ष : **58** **अंक : 4 (285)**
**जुलाई–अगस्त 2019**

**संपादकीय कार्यालय**
केंद्रीय हिंदी निदेशालय,
उच्चतर शिक्षा विभाग,
मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार,
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम्,
नई दिल्ली-110066
वेबसाइट : www.chdpublication.mhrd.gov.in
ईमेल : bhashaunit@gmail.com
दूरभाषः 011–26105211/12

**बिक्री केंद्र :**
नियंत्रक, प्रकाशन विभाग, सिविल लाइंस,
दिल्ली - 110054
वेबसाइट : www.deptpub.gov.in
ई–मेल : pub.dep@nic.in
दूरभाष : 011-23817823/ 9689
फैक्स : 011-23817846

सदस्यता हेतु ड्राफ्ट नियंत्रक,
प्रकाशन विभाग, दिल्ली के पक्ष में भेजें।

**बिक्री केंद्र :**
केंद्रीय हिंदी निदेशालय,
उच्चतर शिक्षा विभाग,
मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार,
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम्,
नई दिल्ली-110066
वेबसाइट : www.chdpublication.mhrd.gov.in
ईमेल : bhashaunit@gmail.com
दूरभाषः 011–26105211/12

सदस्यता हेतु ड्राफ्ट निदेशक, कें. हिं. नि.,
नई दिल्ली के पक्ष में भेजें।

**मूल्य :**

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| 1. | एक प्रति का मूल्य | = | रु. 25.00 | **( डाक खर्च सहित )** |
| 2. | वार्षिक सदस्यता शुल्क | = | रु. 125.00 | |
| 3. | पंचवर्षीय सदस्यता शुल्क | = | रु. 625.00 | |
| 4. | दस वर्षीय सदस्यता शुल्क | = | रु. 1250.00 | |
| 5. | बीस वर्षीय सदस्यता शुल्क | = | रु. 2500.00 | |

पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। इनसे भारत सरकार या
संपादन मंडल का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

# अनुक्रमणिका

**निदेशक की कलम से**
**आपने लिखा**
**संपादकीय**

**आलेख**

| | | |
|---|---|---|
| 1. नवगीत के सर्जनात्मक आयाम | डॉ. अनिल कुमार | 9 |
| 2. 21वीं सदी का हिंदी उपन्यास लेखन और महानगरीय बोध | डॉ. संदीप रणभिरकर | 18 |
| 3. भारतीय लोकगीतों का नया अवतार : चटनी संगीत | डॉ. चंद्रकांता किनरा | 24 |
| 4. गिरिजाकुमार माथुर : चिंतन की एक स्वस्थ परंपरा | सुरेश धींगड़ा | 28 |
| 5. हिंदी के काव्य विकास में जुड़ा हाइकु–एक नया आयाम | डॉ. इंद्रदेव भोला इंद्रनाथ | 33 |
| 6. राष्ट्रीय आंदोलन और हिंदी पत्रकारिता | डॉ. एम. शेषन् | 36 |
| 7. प्रगतिवाद : छायावाद विरोधी तेवर | आचार्य डॉ. केशवराम शर्मा | 41 |
| 8. आधी आबादी और अरुण कमल की कविता | सुश्री प्रीति प्रकाश<br>डॉ. अनुशब्द | 45 |

**धरोहर**

| | | |
|---|---|---|
| 9. रश्मिरथी (प्रथम सर्ग) | रामधारी सिंह 'दिनकर' | 50 |

**कहानी**

| | | |
|---|---|---|
| 10. एक राजनैतिक कहानी (तेलुगु कहानी) | एम. वेंकटेश्वर | 54 |
| 11. पांडे सदन (हिंदी कहानी) | इंदिरा दाँगी | 61 |
| 12. सर्जा – राजा (हिंदी कहानी) | कृष्णा कदम | 72 |

**कविता**

| | | |
|---|---|---|
| 13. स्वतंत्रता दिवस: एक अभिव्यक्ति (नेपाली/हिंदी) | मूल एवं अनुवाद : इंद्र बहादुर गुरूङ | 76 |
| 14. नवकलेवर (ओड़िआ/हिंदी) | मूल : वासुदेव सुनानी<br>अनुवाद :<br>अजय कुमार पटनायक | 78 |
| 15. हिम्मत (संथाली/हिंदी) | मूल एवं अनुवाद :<br>किरण कुमारी हाँसदाक | 82 |

16. प्रार्थना में लिखे गए शब्द — रीभा तिवारी — 84
17. होरीवाला गाँव कहाँ — राधेश्याम बंधु — 85
18. शक्ति — वर्षा सोलंकी — 86

**परख**

19. हिंदी वाक्य विज्ञान — प्रो. राजनाथ भट्ट — 87
(हिंदी वाक्य विज्ञान/ चतुर्भुज सहाय/ आलोचना)
20. तेरे चरणों में — डॉ. शकुंतला कालरा — 91
(तेरे चरणों में/ डॉ. सुधा शर्मा 'पुष्प'/ बाल एकांकी संग्रह)
21. सामाजिक एवं पारिवारिक परिवेश का दर्पण : एक सच ऐसा भी — आशा प्रसाद — 94
(एक सच ऐसा भी/ डॉ. मृदुला झा/ कहानी-संग्रह)
22. पहाड़ी जीवन और प्रकृति सौंदर्य — डॉ. केवल कृष्ण शर्मा — 98
(आस्था के सोपान/ डॉ. यशपाल शर्मा/ यात्रा संस्मरण)

**संपर्क सूत्र** — 100
**सदस्यता फार्म**

# निदेशक की कलम से

आवश्यकताएँ अनंत हैं इसी प्रकार भावना का विस्तार भी असीम होता है अब यह जनमानस पर निर्भर करता है कि वह अपना तादात्म्य आवश्यकताओं की पूर्ति से करें अथवा भावनाओं की संतुष्टि से।

आज का मानव ऐहिक संतुष्टि हेतु बाह्याडंबर में विलुप्त मानसिकता के साथ जीवन व्यतीत करता हुआ अपने भावनात्मक संपोषण से पृथक होता जा रहा है और इस प्रवृत्ति का प्रभाव विश्वव्यापी रूप से चहुँमुखी विस्तार भी प्राप्त कर रहा है। आप मानव की सर्वप्रमुख आवश्यकता है उसकी सांसारिक आवश्यकताओं की अधिकाधिक पूर्ति। इस दिशा में जाएँ तो कहीं अंत दिखाई नहीं देता। आज का बाज़ारवाद मानव मन पर इतना अधिक हावी है कि बेचैनी एवं असंतुष्टि उत्पन्न कर रहा है। यही सामाजिक विसंगति का प्रमुख कारण है।

वहीं दूसरी ओर साहित्य तुष्टि का प्रदाता है। साहित्य का विस्तार चर्चा, विमर्श द्वारा संभव है। साहित्य-पिपासा समाज की तुष्टि तथा विकास को सकारात्मक दिशा में ले जाती है, किंतु बढ़ती हुई बाज़ारवादी मानसिकता ने व्यामोह में बंधे मानव मन में सामाजिक विद्रूपताओं को उत्पन्न किया है। साहित्य संवेदना के धरातल पर मानव मन को उत्प्रेरित कर स्वायत्त विचारों के संप्रेषण से बंधनमुक्त समाज के निर्माण की पृष्ठभूमि तैयार करता है। ऐसा समाज जहाँ समन्वय, सहिष्णुता, सामंजस्य एवं सौहार्द जन कल्याण के प्रेरक हैं। प्राचीन काल से आज तक हमारे कवि, लेखकगण साहित्य द्वारा जन-मानस को कभी उद्वेलित कर कभी भावनाओं के प्रशमन द्वारा समाज के नवीन रूप के निर्माण में सहभागी बने हैं। वर्तमान युग को भी नितांत आवश्यकता है इसी प्रकार के साहित्य आंदोलन की जहाँ सामाजिक समरसता एवं सौहार्द की प्रतिस्थापना हेतु उपयोगी साहित्य रचा जाए।

'भाषा' पत्रिका के माध्यम से हमारा सदैव यह प्रयास रहा है कि समाजोपयोगी सार्थक साहित्य को बढ़ावा दिया जाए। इस क्रम में पत्रिका में सम्मिलित आलेख उल्लेखनीय हैं। इसमें मॉरीशस के डॉ. इंद्रदेव भोला इंद्रनाथ के आलेख को सम्मिलित किया गया है। वहीं हिंदीतर क्षेत्रों से भी लेखकों के साहित्य कर्म को प्रमुखता दी गई है। इनमें डॉ. अनिल कुमार, डॉ. एम. शेषन् के लेख एवं प्रो. वेंकटेश्वर की अनूदित कहानी शामिल है। भाषा का आगामी विशेषांक 'हिंदी एवं भारतीय भाषाओं के अंतर्संबंध' विषय पर आधारित होगा। विशेषांक हेतु आपके आलेख आमंत्रित हैं।

भाषा के संबंध में आपकी प्रतिक्रियाओं की प्रतीक्षा रहेगी। आशा करता हूँ कि भाषा का यह अंक आप सभी सुधीजनों के लिए उपयोगी होगा।

शुभकामनाओं सहित।

**प्रोफेसर अवनीश कुमार**

# आपने लिखा

मैं आपके कार्यालय द्वारा प्रकाशित 'भाषा' पत्रिका का सदस्य हूँ। मुझे यह पत्रिका नियमित प्राप्त होती है। आपका अति आभार। 'भाषा' पत्रिका में पूज्य राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जी के समग्र विचार दर्शन पर आधारित विशेषांक प्रकाशित किया गया है। इस विशेषांक में प्रकाशित गांधी जी से संबंधित सभी आलेख पठनीय एवं संग्रहणीय हैं। आपको साधुवाद।

डॉ. पी. आर. वासुदेवन
हिंदी अधिकारी (सेवानिवृत्त)
361, अन्ना सलाई, तेयमपेट
चेन्नई-600018

'भाषा' पत्रिका अपने स्तरीय लेखन के द्वारा संपूर्ण हिंदी जगत के लिए एक प्रेरक के रूप में उपस्थित है। हिंदी को बढ़ावा देने में 'सागर की सीमाओं से परे' भाषा के मॉरीशस केंद्रित विशेषांक, प्रवासी भारतीय विशेषांक महत्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय हैं।

शुभकामनाओं सहित।

डॉ. विनय कुमार शुक्ल
असिस्टेंट प्रोफेसर
जम्मू केंद्रीय विश्वविद्यालय, जम्मू

# संपादकीय

संपूर्ण विश्व आश्चर्यचकित है कि धर्म, जाति, भाषा और जीवनशैली में इतनी अधिक विविधता होते हुए भी किस प्रकार हम एक राष्ट्र से बंधे हुए हैं। कोई यह समझ ही नहीं सकता कि विविधता के साथ रहना और एक दूसरे के साथ एकता, समन्वय और सामंजस्य बनाए रखना अनंतकाल से भारत की जीवन पद्धति रही है। भारत प्रारंभ से ही पंथ-निरपेक्ष रहा है। पंथ-निरपेक्षता राजव्यवस्था की वह अवधारणा है, जिसमें सभी धर्मों का सम्मान किया जाता है तथा नागरिकों के साथ उनकी धार्मिक आस्थाओं के आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया जाता। मतलब यह है कि यहाँ सभी भारतीयों के समान अधिकार हैं और उत्तरदायित्व भी समान हैं। यह हमारी सामूहिक राष्ट्रीय संस्कृति, जो भारत की विभिन्न धार्मिक और गैर-धार्मिक परंपराओं में समाविष्ट है, की पहचान को दर्शाता है। सदियों से समान रूप से ये हमारी राष्ट्रीय पहचान को परिलक्षित करते आए हैं। भारत के एकत्व का आधार उसकी युगों पुरानी संस्कृति में ही निहित है। यह अंतर्निहित सांस्कृतिक एकता न केवल हमारी राष्ट्रीय पहचान है बल्कि हमारे जीवनमूल्य हैं। इन्हीं मानव-मूल्यों की चर्चा हमारे वेदों, पुराणों और परवर्ती साहित्य में हुई है। हमारी यही संस्कृति हमारे जीवन-मूल्यों, व्यवहारों और सामाजिक समरसता की अलिखित संहिता है।

भारतवर्ष एक इंद्रधनुष के समान है। इंद्रधनुष की अवधारणा इसलिए की गई क्योंकि अनेकताओं में भी सदैव सहिष्णुता का साम्राज्य रहा है। भौगोलिक अखंडता हमारा प्रथम नागरिक कर्तव्य है जिसे संस्कृति और राजनीति से अलग नहीं किया जा सकता। इस मूल-मंत्र को मानते हुए यदि हम राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण का संकल्प करें और राष्ट्र के प्रति भक्ति, निष्ठा और श्रद्धा को लेकर आगे बढ़ें तो राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण की दिशा में निश्चित रूप से एक नया अध्याय जुड़ सकता है। वर्तमान में कई तरह की चुनौतियाँ हमारे सामने हैं। ये चुनौतियाँ बौद्धिक भी हैं और सांस्कृतिक भी हैं। अपने मूल्यों और अपनी मान्यताओं के प्रति निष्ठा न होना भी एक बड़ी चुनौती है। जिस देश को नष्ट करना हो उस देश की संस्कृति को नष्ट कर दीजिए, उसकी भाषा नष्ट कर दीजिए, अपने आप वह समाज और जाति नष्ट हो जाएगी। हम भारतीयों में इतना सामर्थ्य तो है कि इन चुनौतियों का सामना कर सकें, किंतु इसके लिए दृढ़ इच्छाशक्ति और संकल्प की आवश्यकता है। स्वामी विवेकानंद ने कहा था कि "हमारे यहाँ सामर्थ्य की कमी नहीं है। संभावनाओं की भी हमारे यहाँ कमी नहीं है। कमी है संकल्प की, कमी है समर्पण की।"

भारत का भविष्य अभी बनना है और यह भविष्य राष्ट्रीय सांस्कृतिक दृष्टि पर आधारित होगा, भारतीयता पर आधारित होगा। व्यक्तिगत रूप से भारतीय बहुत प्रतिभाशाली हैं और बहुत कुछ हासिल कर सकते हैं। इन्हें प्राप्त करने के लिए हमें लक्ष्य अपने सामने रखने होंगे। इन लक्ष्यों को पाने के लिए रास्ते अलग-अलग हो सकते हैं, मतभेद हो सकते हैं, किंतु राष्ट्र की दृष्टि से कभी भी, कहीं भी मतभेद नहीं होना चाहिए।

भारतवर्ष की विविधताओं के सदृश ही हमारा साहित्य भी अनेकों विरासते समेटे हुए है, आवश्यकता है तो उन्हें सामने लाने की। हमारा सदैव यह प्रयास रहा है कि 'भाषा पत्रिका' हिंदी तथा सभी भाषाओं में किए जा रहे कार्यों में सामंजस्य बनाए रखे।

प्रस्तुत अंक में पूर्व की भाँति विविध स्तंभों के अंतर्गत सामग्री दी गई है। भाषा के अंकों के बारे में प्राप्त सम्मतियों से हमें आगामी अंकों को और बेहतर बनाने का संबल मिलता रहा है। पत्रिका के विषय में आपके विचार सदैव स्वीकार्य एवं स्वागत योग्य हैं।

**(डॉ. राकेश कुमार)**

"कल्पना एक ऐसी रचनात्मक शक्ति है जो प्रत्येक मनुष्य के भीतर होती है। एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति की कल्पना में आनुपातिक भेद हो सकता है। इसके बिना न तो मनुष्य कला का निर्माण ही कर सकता है, न उसका रसास्वादन ही। न वह भूत की भावना कर सकता है, न भविष्य का अनुमान। न वह अज्ञात की जिज्ञासा कर सकता है न महत्वाकांक्षा या दिवास्वप्न का आनंद ही ले सकता है। कल्पना की महत्तर सृष्टि एक दिन में नहीं होती। उसके लिए वर्षों की अनवरत अनुभूति-साधना आवश्यक है। रचनाकार की मन:स्थिति उस भीतर-भीतर जलाने वाली आग की तरह होती है जो बाहर से दीख नहीं पड़ती और सहसा तरल लपटों का रूप ले लेने पर बरबस ही हमारी 'ऐंद्रियचेतना' को स्पर्श का आमंत्रण देती है। साहित्य में इसी 'शीतल ज्वाला' को रूप देने का काम कल्पना करती है। बिंब-निर्माण के द्वारा इस 'ज्वाला' को दृश्य बनाकर हमारे सामने उपस्थित करती है और हमारे ऐंद्रिय बोध को तृप्त करती है।"

**केदारनाथ सिंह**

# नवगीत के सर्जनात्मक आयाम

डॉ. अनिल कुमार

कविता के क्षेत्र में परिवर्तन कभी आकस्मिक नहीं हुआ बल्कि यथास्थिति से संघर्ष की ओर प्रयोग करने की स्थिति में हुआ। परिवर्तन से संबंधित तर्कपूर्ण चिंतन और बौद्धिकता से युक्त मूल्यांकन के द्वारा हुआ। कविता के इस परिवर्तन में जो अंत: सत्य निहित है, यह एक ओर जहाँ सार्वलौकिक ठहरता है वहीं समानांतर रूप से समकालीन होता है। कहना न होगा कि पाठक की संवेदना को पूर्णतया नवीनीकृत करने में ऐसे परिवर्तन प्राय: सफल होते आए हैं। मेरा मानना है; नवगीत का प्रादुर्भाव भी इसी परिवर्तन के क्रम में हुआ है।

हम मान सकते हैं कि नवगीत का काल 1955 से आरंभ होता है। नवगीत की शिनाख्त अर्थात् डॉ. राजेंद्र प्रसाद सिंह द्वारा संपादित 'गीतांगिनी' की भूमिका में 'नवगीत' का उल्लेख तथा डॉ. शंभुनाथ सिंह के द्वारा 'नवगीत दशकों' का प्रकाशन कविता के क्षेत्र में नए परिवर्तनों को स्पष्टत: पुष्ट करते हैं। वस्तुत: गीत की नई पीढ़ी-साठोत्तरी पीढ़ी या उसके कुछ पूर्व की पीढ़ी के गीति साहित्यिक कृतित्व में सबसे लक्षणीय बात को ठीक अजनबियत या खंडित पहचान के साथ उल्लेख किया; फिर भी आत्मप्रवंचना एवं आत्मश्लाघा और स्मृतिहीन समय में नवगीत ने स्वयं को स्मृतिवान बने रहने के योग्य बनाया। परिवर्तन को पूरी तरह आत्मसात करते हुए मध्यवर्गीय, चिंतनशील समाज को चित्रित किया। दलितों और शोषितों के प्रति विचारवान बना।

एक संतुलित अभिव्यक्ति के साथ काल को उसके अनुरूप रूपायित करने वाली कविता ही हर काल में प्रासंगिक होती है। काल के इस गहन बोध को नवगीत में अभिव्यक्ति मिली है तथा नवगीतकार इस तथ्य को जानकर ही युगानुकूल शब्द देने में सफल हुए हैं। यदि गंभीरता से विचार करें तो यही कविता की पृष्ठभूमि है।

सन् 1980 का दशक यदि नई कविता के चरमोत्कर्ष का काल था तो नवगीत भी एक पर्याप्त परिवर्तित विकसित अवस्था के काल पर अपने आधिपत्य की घोषणा कर रहा था क्योंकि इसमें रचनात्मकता थी और सार्थकता भी जो कविता के सभी गुणों से परिपूर्ण थी। इसलिए इसे अनिवार्य रूप से अपनी दक्षता को, सार्थकता को, जस्टिफिकेशन को साबित करने के लिए अपने सामर्थ्य, स्वरूप और स्वभाव को प्रत्यक्ष करने की जरूरत पड़ी। यह नवगीत और नवगीतकार दोनों जानते थे कि यदि वे समाज का साधारण धर्म निर्वाह करने में समर्थ हैं, तो साहित्य में एक विशेष धर्म की सृष्टि होगी और वे उसे नया अवयव भी देंगे, जिसके ताल पर दोनों चल सकेंगे।

दक्षता, निपुणता अथवा सिद्धि धर्म का एक मौलिक स्वभाव है। इस मौलिक स्वभाव ने अपना धर्म संपादित करते हुए अपने इर्द-गिर्द घिरे हुए अपर्याप्तता के बोध के उस निविड़ अकेलेपन में स्वयं को प्रस्तुत किया तथा अपने धरातल को विकसित किया, जिसमें एक नई वस्तुस्थिति थी और वह था - सौंदर्यबोध। जहाँ

तक मैं समझता हूँ, यही उसकी पहली कालचेष्टा थी - चाहे वह नई अभिव्यक्ति से प्रकट हुई हो या कथ्य के नए प्रयोग से या नए शिल्प से या ताल से, सुर से या धुन से, छंद से या लय से, सब में नवीन सर्जना का नया रंग और नई पेंटिंग थी।

इस तरह भारतीय साहित्य जगत में जिस नई विधा का प्रादुर्भाव हुआ, वह नवगीत है। वास्तव में नवगीत कालचेष्टा की एक ऐसी चाहना है, जिसे तर्कना से नहीं पाया जा सकता। यह चाहना तर्कना के तल पर आकर भी कमजोर नहीं होती वरन् अधिक दुर्निवार हो जाती है। वह चाहना में अंतर्भुक्त होकर स्वयं ही उत्प्रेरित होती रहती है, वैसे ही जैसे कोई कस्तूरी मृग उन्मथित, उन्मादित होता रहता है। इस विधा का काव्य क्षेत्र अत्यंत व्यापक, बहुमुखी और बहुरंगी है। इसके अनेक स्वर हैं, जो सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक के साथ-साथ दार्शनिक और प्रेमानुभूति को भी अनुरंजित, आह्लादित करते हैं किंतु इनके बावजूद जो स्वर सबसे प्रखर, उदात्त और इरादों से भरपूर है, वह स्वर समसामयिक जीवन जीने के संघर्ष का है।

नवगीत में नया और त्वरित काल-बोध भी एक विस्मय की स्थिति है। सच का काल-बोध एक समस्या है क्योंकि अतीत हमारे मन-मस्तिष्क पर हावी होता है और आवर्ती महाकाल की नई चर्चा संशयपूर्ण प्रतीत होती है। कह सकते हैं कि हमारा काल बोध स्पष्ट नहीं होता अथवा हमें स्पष्ट नहीं होते अथवा हमें स्पष्ट नहीं दिखता और हम सांप्रतिक काल में अवसन्न अवस्थित रहते हैं। दूसरे शब्दों में हमारा यथार्थ भी क्षीण होता है, इसीलिए उसे संदेह की दृष्टि से देखा जाता है, उसका संकेत करने वाले को भी शक के दायरे में रखा जाता है, यहाँ तक कि काल के वृहत्तर नए आयामों का संकेत मिलने पर भी उसका वह आक्रांत और संकटापन्न प्रतीक होता रहता है, जिससे वह जीता है और जिसे वह आत्यंतिक महत्व देता है। यह स्थिति आज का एक पहलू है, आज के नवगीत का और उसकी स्थापना का।

उपर्युक्त अवधारणा एक प्रकार की प्रक्रिया है या उससे भी कुछ अधिक है, जिसके कारण हम एक स्थापना, मान्यता पर पहुँचते हैं, जहाँ नवगीत यदि पूर्णतः स्थापित न भी हो सके तो भी उसकी स्वीकृति अवश्य मान्य हो जाती है।

हम और हमारे आलोचक, विद्वान और विचारक भी लगातार किसी भी नई विधा के लिए अब तक तुलनात्मक स्थिति उत्पन्न करते रहे हैं। किंतु इस परिप्रेक्ष्य में एक प्रश्न हम सभी के मन में रहता है, जिसे प्रत्यक्ष करने से हम सब कतराते रहते हैं। परिणाम स्वरूप उस नई विधा का प्रश्न ज्यों-का-त्यों बना रहता है।

हम सभी निजी तौर पर भी और औपचारिक तौर पर भी, खास अवसरों पर भी दावा करते हैं कि हमारा साहित्य सामाजिक परिवेश की परिस्थितियों के समानांतर गति करता है। गौरतलब है कि निरंतर गतिशील सामाजिक परिस्थितियाँ भी हमारे साहित्य को गतिशील बनाती हैं। इसी गतिशीलता के कारण साहित्य में परिवर्तन लक्षित होता है। इस विकासशीलता को जानने-समझने पर भी हम अभ्यासवश और आलस्यवश एक ओर पूर्व के साहित्य और दूसरी ओर उत्तरवर्ती साहित्य को रखकर तुलना करते रहते हैं, जो हास्यास्पद है और हमारा दुर्भाग्य भी है कि जब तक हम पूर्व की विधा पर चर्चा करते रहते हैं तब तक उत्तरवर्ती भी पूर्व का हो जाता है।

एक और बात भी लक्षित होती है हम जब भी भारतीय कविता की बात करते हैं तो हमारा ध्यान आज केवल नई कविता की ओर होता है, जो इस काल की आधुनिकता में आधुनिक बनी भारतीय समाज, सामाजिकता, सामाजिक जीवन, परिवेश और परिस्थितियों के हू-ब-हू चित्रण करने की स्थिति में नहीं है। दूसरी बात यह है कि उसके आदर्श पर भारतीय साहित्य परंपरा तो हैं किंतु भारतीयता के प्रति पूरी तरह निष्ठावान नहीं है। वस्तुतः नई कविता में कहीं एक बुनियादी भूल है या वह कोई महत्व की बात भुलाए दे रही है अथवा उस महत् की उपेक्षा कर के मिट जाने दे रही है। कवियों की दृष्टि भी अधिकांश अनदेखा कर रही है।

दरअसल हमारे साहित्य में आरंभ से ही भारतीय जीवन-दृष्टि है, जिसमें हमारी सुदृढ़ परंपरा और सामाजिक जीवन का स्वभाव और उसकी संपदा है। भारत की एक संश्लिष्ट सामाजिक इकाइयों के मूल में जो गहरी एकात्मता है, उसकी गंध है। भारतीय साहित्य का दर्शन

जो संसार के किसी भी देश, राष्ट्र या राज्य के साहित्यिक दर्शन की अपेक्षा अधिक दीर्घकाल से उनके जीवन को प्रभावित करता रहा है, वह गौरव है। फिर भी यह सच है कि संस्कृत साहित्य के ह्रास के समान हिंदी साहित्य का वह गरिमामय स्वरूप भी अवसन्न हुआ। पाश्चात्य सभ्यता की आध्यात्मिक शून्यता जैसे विचार-बिंदुओं को भारतीय साहित्य से जोड़कर राजनैतिक विमर्श का कारण बनाया गया तथा साहित्य को भारतीय-राजनैतिक की केंद्रीय समस्या के रूप में देखा गया। इसके बावजूद अधिक कुछ गहरा या कहें अनछुआ हासिल नहीं हो सका। अपितु पश्चिम से टकराहट होने के बीच कविता नवगीत के रूप में संपुंजित हुई। क्योंकि प्रत्येक युग की अपनी नियति विवशता-विडंबना-सम्मोहन होते हैं, उसके परिप्रेक्ष्य में नवगीत को देखना, इस नियति-विवशता से पृथक नहीं माना जा सकता। यह इसलिए कि लोकप्रिय कविता की सबसे बड़ी विशेषता उसका जनहित में होना है। उस सच्चाई से परे यदि कोई निजी लोकप्रियता के नाम पर 'आवेग' और उत्तेजना' लिखे तो वह 'रिडिक्युलस' हो जाएगा। गौरतलब यह है कि नई कविता में आवेग उतार पर आ गया है। उत्साह जनित कविता की आँखों में अपनी भूमिका न निभा पाने का दर्द छलक आया है। आज राजनीति और जनता का संबंध शासक और शासित का हो गया है। समाज बदलने वाली नई कविता से उसका नाता टूट चुका है।

निस्संदेह भारतीय जीवन दृष्टि और भारतीय साहित्य एक दूसरे के पर्याय हैं। दोनों का अन्योन्याश्रय संबंध है, जिसकी अनुगूँज छंदयुक्त है तथा उसमें लय व्याप्त है, जो नाद की तरह अनवरत ध्वनि में वितरित होती रहती है, जिसके कारण प्रकृति और प्राकृतिक जीवन दोनों सौंदर्ययुक्त होकर निरंतर स्पंदित होते रहते हैं। नवगीत में भारत की प्रकृति है और संस्कृति भी, जिनके मेल से भारतीयता बनती है। इसलिए इसके चिंतन में यदि एक ओर देशज गंध है तो दूसरी ओर आंचलिक सौंदर्य है। यदि एक ओर सामाजिक जीवन का परंपरा बोध है तो दूसरी ओर समाज की समकालीन चेतना है।

कविता जगत में नवगीत एक नया फन है। आधुनिक तकनीक का नमूना है। शब्दों में प्रयोग की कला, मुहावरों में नए युग की नीति, बिंबों में नई बौद्धिकता की तहज़ीब, नवीन धुन, सुर में बदलते मिजाज की भूमिका, संगीत में संपूर्ण को समेटने की अपूर्व क्षमता और कहन, सहन की आधुनिकता ने न केवल व्यक्ति और समाज को अपनी अनुभूति से जोड़ने में कमाल हासिल किया है, बल्कि कविता के वास्तविक रूप, गुण, स्वभाव, शील, सौंदर्य का भी दर्शन कराया है। यथा:

*झरता है बादल से नीला आकाश*
*पेड़ों की अंजुरि से रिसती है धूप*
*सूरज की भाषा को*
*कौन पढ़े?*
*सूर्यमुखी उपवन में*
*खिलता एकांत*

(शब्दों के पद/किशोर कावड़ा)

आज नई कविता और नवगीत में जो पार्थक्य परिलक्षित है, वह कविता के संगीत विहीन हो जाने के कारण। कविता अपने आदि उद्भव में संगीत के साथ थी। 'हिंदी कविता और छंद' नामक निबंध में दिनकर जी ने यह लिखा है- "ऐसा लगता है कि सृष्टि के इस छंद-स्पंदनयुक्त आवेग की पहली मानवीय अभिव्यक्ति कविता और संगीत थे। आरंभ में कविता और संगीत दोनों एकाकार थे; मनुष्य के मुख से लय का जो आनंद फूटा, उसमें शब्द और संगीत दोनों मिले हुए थे।"

कविता में छंदहीनता के प्रचलन से पूर्व छंद की लय ही कविता की लय थी। अक्सर ऐसा होता था कि समय-समय पर उठने वाले भावों, विचारों के अनुकूल साम्यता एवं मन को मुग्ध करने वाली लय के सौंदर्य को अधिक महत्व देने के लिए विशिष्ट छंदों का चुनाव काव्यकार स्वयं कर लेते थे या सौंदर्य महत्ता का ध्यान कर नए छंदो का निर्माण भी करते थे। यही कारण था कि कविता में प्रयोग होने वाले छंदों से ही मनोदशा, मनोवेग तथा सामयिकता का भी बोध हो जाता था। वस्तुत: छंद हिंदी कविता का कल्पवृक्ष रहा है, किंतु रीतिकाल की अस्वाभाविकता में छंद संकुचित होता चला गया। कदाचित् इस कारण से या अपनी अत्यधिक मुखरता के लिए नई कविता ने अभिधात्मक गुण और गद्य का रूप धारण किया हो।

कविता का छंद से मुक्त होना एक अस्वाभाविक परिणति है। हाँ, यह सच है कि उसके प्रति विद्रोह अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के साथ समाज में व्यापक

विशृखंलता को सही शब्द देने अथवा स्वयं को उसके अनुरूप प्रमाणित करने के प्रयत्न में हुआ, किंतु यह एक ऐसा प्रयोग था, जिसके कारण कविता प्रयोगवादी या नई कविता बनकर पर्याप्तता के लिए अपना धर्म भूल गई।

नवगीत नई कविता नहीं है, मगर कविता है, कविता के अंतर्गत एक विधा है। मेरा मानना है, यदि कविता का आरंभ गीत से हुआ है तो यह कविता है क्योंकि गीत में आत्मा ध्वनित होती है। इसलिए इसके नाद में जो व्यापकता हैं, उससे कुछ भी अछूता नहीं है। आधुनिक साहित्य भी यह स्वीकारता है कि कविता का इतिहास मुख्य रूप से प्रगीत मुक्तकों का है। गौरतलब यह है कि नवगीत को प्रकृति के स्वभाव-सादृश्य प्रतिपादन से भारतीय चिंतक और सर्जक मानस को समग्रता से समझने का अधिक अवसर प्राप्त होता है किंतु जो परिदृश्य दिखाई दे रहा है, उससे लगता है कि नवगीत के आदि उद्‌भव के विकास की जानकारी के बावजूद आलोचकों की दृष्टि में कविता और नवगीत की पारस्परिक दूरियाँ ज्यों की त्यों हैं।

नवगीत ने अपनी सर्जना के स्वरूप को प्रकृति और उसके सौंदर्य में स्थित होकर रचा है। संपूर्ण मानवों की मानवीयता के विविध, विपुल वैशिष्ट्य एवं साहित्य की वैधानिकता के आधार पर स्वयं को विकसित किया है तथा अपने स्वात्म के अतिरिक्त सारी सृष्टि, चर-अचर, भाव, अनुभूति, उद्‌देश्य बुद्‌धि, प्रेरणा आदि साहित्यिक मीमांसा का आधार बने, इस रूप में स्वयं को प्रत्यक्ष किया है। इतने पर भी कई बार यह प्रश्न सामने आता है कि नवगीत क्या है? इस प्रश्न का उत्तर भारतीय कविता इतिहास के उस काल का दर्शन कराता है, जहाँ गीत और कविता का विधान पृथक होने पर भी संगीतात्मकता में समानता थी। दरअसल कविता सामाजिक जीवन की रागात्मक अभिव्यक्ति है। आज भले ही नई कविता की अभिव्यक्ति में राग का रूप सपाट हो गया है, किंतु पूर्व की अभिव्यक्ति में रागात्मकता की प्रधानता थी तथा अपनी स्वाभाविकता के साथ कविता की अनुभूतियों में भी निहित थी। यह अलग बात है कि फ्रायड, कोपरनिकस, डॉरविन, वाटसन आदि के सिद्‌धांतों में मानव की स्थिति अनुभूतियों के धरातल पर भिन्न है, मगर इस सत्य को झुठलाया नहीं जा सकता कि अनुभूति के साथ रागात्मक अभिव्यक्ति का चिर संबंध है; अन्यथा क्रौंच की हृदय-विदारक चीख से आदि कवि बाल्मीकि के अनुष्टुप छंद में करुणा के रागारुण का बोध नहीं होता। इसीलिए छंद, ताल, स्वरैक्य और मेल, तारतम्य और संतुलन की सृष्टि इस स्वाभाविक शक्ति को संभाले रखने में निरंतर प्रयत्नशील है एवं कला की कृत्रिमता भी इनमें देखी-परखी जा सकती है। यहाँ यह जानना जरूरी है कि कला, कविता जिसका एक अंग है, उसमें कृत्रिमता और मानवीय भाव संतुलन की रागात्मिका बुद्‌धि अनिवार्य है। वस्तुतः रागात्मिका बुद्‌धि का ही सानिध्य प्राप्त कर हमारे मन की कोमल भावनाएँ प्रकृति की संपूर्णता से संयोग स्थापित करने में समर्थ होती हैं।

यह सर्वविदित है कि प्रकृति विश्वरूपात्मक होने के कारण अपने विस्तार के क्षणों में संगीतात्मक और सौंदर्यात्मक होती है और ये दोनों जिस आधार को ग्रहण कर स्वयं को अभिव्यक्त करते हैं, वह कविता है। डॉ. रामलेखावन पांडेय के अनुसार कविता को जानने के लिए यह एक सूत्रात्मक वाक्य है। यदि इसकी मीमांसा करें तो संगीतात्मकता एवं सौंदर्यात्मकता दोनों इस सूत्र में सन्निविष्ट हैं। इन दोनों में ही सामाजिक चेतना एवं संवेदना के संरक्षण के महत्वपूर्ण प्रश्न जुड़े हुए हैं। इन पर खोज होनी चाहिए क्योंकि यह प्रश्न कविता के संपूर्ण पर्यवेक्षण के लिए प्रतिबद्‌ध है तथा आलोचना के मांनदंडों के लिए भी विचारणीय है। यहाँ तक कि नई कविता और नवगीत को ठीक-ठाक समझने के लिए भी आवश्यक है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि 'हृदय पर नित्य प्रभाव रखने वाले रूपों और व्यापारों को भावना के सामने लाकर कविता वाह्य प्रकृति के साथ मनुष्य की अंतः प्रकृति का सामंजस्य घटित करती हुई उसकी भावनात्मक सत्ता के प्रसार का प्रयास करती है। यदि अपने भावों को समेट कर मनुष्य हृदय को शेष सृष्टि से किनारे कर ले या स्वार्थ की पशुवृत्ति में ही लिप्त रखे तो उसकी मनुष्यता कहाँ रहेगी?..... इस विश्व काव्य की रसधारा में जो थोड़ी देर के लिए निमग्न न हुआ उसके जीवन को मरुस्थल की यात्रा ही समझनी चाहिए।'

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि

कविता अभिव्यक्ति की पर्याप्तता समाज के निकट होने के लिए जिस धर्म की आवश्यकता होती है, वह कला का, कला वस्तु का गौरव, उसकी भव्यता है। दरअसल यह भव्यता अर्थात् भावात्मक एकता के विभिन्न भाव जिस रासायनिक क्रिया के गठन में एक होते हैं, उस गठन का केंद्र आज नवगीत है। इसके अतिरिक्त एक बात और है कि कवि कलाकार और अन्य लोक-जन प्रायः अंशजीवी होते हैं, जब समग्र का संस्पर्श अनायास हमें मिलता है, वह भले ही अनुभव के क्षण का छुवन हो पर संपूर्ण उसमें समाया होता है, वह सुख भी नवगीत में ही मिलता है, अर्थात् लय में संगीत का सुख।

नवगीत की लय छंद के कारण संगीतमय होती है और लय समग्र का बोध है तथा उसकी रागात्मक प्रेयता के सुर, ताल, धुन आदि की इकाइयाँ अलग हैं, किंतु संप्रेषण में अद्‌वितीय हैं। कदाचित इस तथ्य से सभी संवेदनशील व्यक्ति परिचित हैं कि लोक-जन जब अपना गीत गाता है, तो उसे जीता भी है। उसके गीत में संचारी भाव गीत तक सीमित नहीं होते, वरन् उसमें उसके समूचे तत्कालीन अस्तित्व अभिव्यंजित होते हैं।

कोई भी साहित्यकार चाहे वह कथाकार या कवि हो उसका दूसरे तक पहुँचना जरूरी है। इस पहुँचने की महत्वपूर्ण क्रिया में जितना प्रबल आग्रह सांगीतिक लय का होता है, उतना किसी भी साहित्यिक विधा में सुगम नहीं होता क्योंकि सांगीतिक लय वह सुरंग है, जिसके भीतर गीत के अतिरिक्त शायद ही अन्य किसी का प्रवेश इतना आसान हो।

आज नवगीत ने अपने शब्दों, बिंबों, प्रतीकों, मुहावरों के विशिष्ट प्रयोग एवं नए शिल्प विधान से सभी क्षेत्रों को विकसित और उर्वर किया है। चाहे लोक हो या लोकांचल नवगीत के नएपन का प्रभाव उन पर स्पष्ट दर्शनीय है। इसने अपने नएपन से गीतों, लोकगीतों की पारंपरिक गीति-नीति बदली है तथा प्रयोग भी। नवीनता से लोकांचल की सारी चित्र-वीथियाँ भी बदली हैं। वस्तुतः नवगीत ने अतीत के चित्रखंडों में वर्तमान के जीवंत दृश्यों से एक लोक रचा है जिसमें मानवीय संबंधों की अकृत्रिम छवि-रंजना आज के परिवेश और परिस्थितियों का सौंदर्य मूलक कैनवस बना प्रतीत होता है। यथाः

*रात चैत की*
*देख रही प्यार से*
*पीला चाँद उगा है*
*पर्वत पार से*
*क्षीर सिंधु से उठी*
*नई हिलकोर है*
*पत्ता-पत्ता दम साधे*
*हर ओर है*
*तेज कदम चल रहे*
*नक्षत्र कहार-से*

(पीला चाँद उगा है/ बुद्‌धिनाथ मिश्र)

नवगीत आधुनिकता के सारे उपादनों, आसंगो के प्रति आस्थावान होकर भी अपनी माटी के प्रति अत्यंत संवेदनशील है। ये इसलिए कि इसी मृत्तिकागंध से भारतीय संस्कृति के मूल्यवान धरोहर सुरक्षित हैं। इसी माटी में लोक और लोकांचल सौंदर्य का वह रंग और सुषमा भी स्थित है, जिसमें इसकी रागात्मक संवेदना अपनी पूर्णता के साथ स्थित है। यह कहने में मुझे कोई संकोच नहीं है कि आज के वस्तुवादी युग में नई कविता का लोकांचल और प्रकृति से मोह भंग होता जा रहा है, किंतु नवगीत में देशज मोह तथा प्रकृति और लोकांचल के लिए गहरी संवेदना है। यथाः

*वन-पाखी-सी*
*चहक रही है*
*धूप सुबह की*
*अभी-अभी उतरी है*
*छज्जे से आंगन में*
*सपने बाँच रही है*
*पूरे घर में, मन में*
*बनबेला-सी महक रही है*
*धूप सुबह की*

(धूप सुबह की/ यशोधरा राठौर)

यह सभी जानते हैं कि जन संवेदना लोक गीतों में जितनी पाई जाती है, उतनी साहित्य की किसी विधा में नहीं। वास्तव में लोकगीत ही मानव चेतना के उन गुप्त आयामों का उद्‌घाटन करता है, जो आम की अमराइयों, नदी के शांत एकांत तटों, रेतीले मैदानों, धनखेतों, पेड़ों की स्तब्ध छावों, सावन की झीसियों भीगते पलों में कैद

होते हैं। निस्संदेह, लोकगीतों में वे आयाम व्यापक हैं, फिर भी नवगीत ने अपनी प्रक्रिया में लाकर उन्हें अधिक अनुरंजित किया है। इतना ही नहीं, अतीत और वर्तमान को गूँथकर एक ऐसे लोक का निर्माण किया है, जिसमें संवेदना और समझ एकमेक हुई जान पड़ती हैं। यथा:

*पाँवो में*
*घुँघुरू गाएगा*
*सँवरेगा जो गाँव,*
*हरियाएगा*
*रूप धरा का*
*मुस्काएगा पेड़,*
*हरी घास से*
*हो जाएगी*
*हरी-भरी हर मेड़,*
*स्वर्ग लगेगी*
*हर धनखेती*
*लग जाए जो दाँव,*
*फिर से मधुबन*
*रस भर देगा*
*रास रचेगा रोज,*
*शुभ्र चाँदनी के*
*आते ही*
*मिट जाएगा सोज,*
*कहीं न होगी*
*रात अमावस*
*चमकेगा हर ठाँव*

(सँवरेगा जो गाँव/ डॉ. अनिल कुमार)

तत्कालीन आलोचकों ने प्रयोगवादी कविता (नई कविता) की अतीव मुखरता देखकर गीत की अपर्याप्तता पर अनेक मंतव्य दिए। उन दिनों किसी हद तक गीत में अपूर्णता भी थी। गीत में तब शब्द प्रयोग और अर्थ संदर्भ इसलिए भी नहीं थे क्योंकि उनकी मांग भी नहीं की गई थी। यही कारण है कि गीत को 'निराला' से जो कुछ मिला, वह आवश्यकता के लिए अपर्याप्त होने के बावजूद एक बदलाव के मार्मिक बिंदु पर मान लिया गया। यह इसलिए कि गीत को बदलाव की चिंता थी। मेरा मानना है, प्रत्येक अपर्याप्तता बदलाव की निधि में उसके लिए नया आविष्कृत करता है- नया कुछ, समर्थ कुछ, सुंदर कुछ ऐसा कुछ जो उसके विकास के लिए गहरा अभिप्राय रखता है। यह गहरा अभिप्राय ही नवगीत का कविता होना है। कविता अर्थात् भारतीय कविता जिसे रीतिकाल की अस्वाभाविक मांग के कारण भारतीय कवियों को छोड़ना पड़ा तथा उन्हें पश्चिम की राह पर चलने की विवशता झेलनी पड़ी।

नवगीत कविता है। इसमें छंद, लय और संगीत स्वाभाविकता के साथ उपलब्ध है। किंतु संगीत को कविता के संदर्भ में अन्य विषय माना गया है, इसलिए अन्यता के स्वरूप पर विचार जरूरी है। प्राय: यह सर्वविदित है कि भारतीय सर्जनात्मक कलाओं में कविता और संगीत अनन्य हो जाते हैं। 18वीं शती से पहले पश्चिम में भी यही स्थिति थी, किंतु उसी शती में ही यह स्थिति नहीं रही। इसका अर्थ यह नहीं कि हम भारतीय पश्चिम की नकल करें क्योंकि शास्त्रीय संगीत और नृत्य आज भी, अभी तक काव्याभिप्रायों से जुड़े रहकर विशेष अर्थवत्ता पा रहे हैं। अस्तु, इस तथ्यपरक स्थिति को नवगीतकारों को ही नहीं, काव्यकारों, आलोचकों को भी समझना चाहिए क्योंकि कविता और संगीत का शाश्वत संबंध है। यह संगीत ही है, जो सामाजिक जीवन और उसके संगठनात्मक विकास को एवं अंचल, देशज को एक सूत्रता प्रदान करता है। यथा:

*छोड़ आए थे जिसे हम*
*खेत में*
*पक गई होगी सुनहली धान*
*महकती होगी हवा*
*घर-गाँव की*
*हर देह*
*और हँसिए को*
*छुआ होगा*
*कुँवारी उँगलियों का नेह*
*तोड़ आए थे जहाँ हम*
*बाँसुरी*
*सिसकती होगी अकेली तान*

(पक गई होगी सुनहली धान/अनूप अशेष)

नवगीत में प्रकृति-काव्य के संतुलित विश्लेषण और उसमें उपस्थित दृश्यावलियों, बिंबों तथा अभिव्यक्तियों पर दृष्टिपात करना इसलिए समीचीन है कि भारत के प्राकृतिक परिवेश की गहन व्यापकता के साथ

संगीतात्मकता स्वभावतः जुड़ी है। सृष्टि की प्रारंभिक अवस्था में ही दोनों की उत्पत्ति और उनका विकास भी एक साथ हुआ। यह विकास प्रकृति के सारे अवयवों में देखा जा सकता है। विश्व-साहित्य के गंभीर अध्ययन के पश्चात् एक शाश्वत् तथ्य उभरकर यह आता है कि कलात्मकता जिसमें संगीत विद्या संश्लिष्ट होती है, वह कविता की सार्थक एवं महत्वपूर्ण विशिष्टता बन जाती है। कविता की ऐसी कलात्मकता होमर, दोस्तांयवस्की, टालस्टॉय, शेक्सपियर, रवींद्रनाथ टैगोर, जयशंकर प्रसाद आदि के काव्यों में देखी जाती है।

नवगीत परंपरागत साहित्य से भिन्न एक ऐसी आधुनिक कविता है, जिसमें सामाजिक लोकतंत्र के सुर एवं सामाजिक नव निर्माण की लय है। समाज के कमजोर वर्गों के शोषण के प्रति आक्रोश के साथ समानता के परिवेश में मानवतावादी सोच की सतह पर लोकधर्मी सौंदर्य और साहित्यिक सौंदर्य को विस्तार देने का विधान है। नवगीत ने अपनी पैनी दृष्टि से मानवाधिकारों की दिशाओं को पुरनूर किया है। इसका काव्यगत रूप सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक विषमता के प्रति सावधान, विचारवान होकर सामाजिक प्रतिनिधित्व, समता, बंधुता, मैत्री, करुणा, शील और न्याय आधारित संरचना के प्रति संवेदनशील एवं निष्ठावान है।

सन् 1980 के बाद नवगीत ने समाज को एक नया अर्थ दिया। जितनी रचनाएँ लिखी गईं, उनमें वह आदमी अपनी पूरी ताकत के साथ आकर खड़ा होता प्रतीत होता है, जिसे पारंपरिक सामाजिक व्यवस्था में हम हाशिए पर रखते आए थे। ध्यातव्य यह है कि आम आदमी समकालीन विचारों एवं संगठनों से जुड़कर सशक्त समाज गढ़ने की स्थिति में आ गया है। इसी प्रकार सामाजिक जीवन की मुख्य धारा में दलितों और स्त्रियों को लेकर जिस तरह की धारणाएँ बनाई गईं थीं, उसे भी आज नवगीत ने बहस का मुद्दा बना दिया है। भारतीय समाज, राजनीति की दिशा बदल गई, आर्थिक स्थिति में बदलाव आया और गतिशील भी हुआ।

नवगीत ने आज की दुनिया के समाज का साहित्य रचा है, जिसमें अपील भी है और संघर्ष भी तथा इन सबका संबंध समकालीन जीवन और उसमें घटित हो रहे सामाजिक - राजनैतिक परिस्थितियों के यथार्थ से है। इतना ही नहीं, समकालीन युग में जिस तरह की वैचारिक निर्मितियाँ आकार ले रही हैं, उनकी रचनात्मकता की ऊर्जा या तो सामाजिक जीवन का निर्माण करती हैं अथवा ध्वंस; उन्हें भी आज नवगीत नियंत्रित करता प्रतीत होता है।

वर्तमान समय में बेबसी, लाचारी, उत्पीड़न का जो सवाल है, उस पर भी नवगीत चेतना के स्तर पर नए सिरे से सोचने, विचारने एवं एक नई बहस की मांग खड़ी करता है। इस प्रक्रिया में एक नए परिवेश में समाज और समाजबोध के साथ ही समकालीन सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक परिस्थितियों को जोड़ते हुए उन वैश्विक विचारों तथा परिवर्तनों की प्रक्रियाओं को भी समझने - जानने की स्थिति-परिस्थिति पर दृष्टिपात करने का दृष्टिकोण नवगीत में है। इसके साथ ही नवगीतों के गंभीर अध्ययन से यह पता चलता है कि वैज्ञानिक आविष्कार एवं तकनीकी समाज ने बौद्धिक चेतना पर बल देने के लिए किस प्रकार हाथ बढ़ाया,आज तक चली परंपराओं को वैज्ञानिक बुद्धिवाद ने किस प्रकार खंडित किया, मूल्य विघटन से बचने के लिए नवगीतकारों ने कथ्य को कितना धारदार बनाया, राजनैतिक झमेले में पड़े हुए मनुष्य को कैसे मुक्त किया जा सकता है, आंचलिक जीवन में व्याप्त भारतीय संस्कृति, साहित्य, भाषा, बोली को कैसे जीवंतता प्रदान की जा सकती है, सांप्रदायिकता किस प्रकार मिटाई जा सकती है, ईश्वर, प्रेम आदि मानवीय संवेदनाओं को कैसे पुनर्स्थापित किया जा सकता है, इन सबों को इस विधा ने अपने भीतर समाविष्ट किया है।

समकालीन नवगीत में परिवर्तन की जिस प्रतिबद्धता का रूप देखने को मिलता है, उसमें इस विधा की परंपरागत सारी मान्यताएँ परिवर्तित हुई प्रतीत होती हैं। यहाँ तक कि गीत और कविता के संगम से विनिर्मित नवगीत कविता के श्रेष्ठ मानकों पर भी खरा प्रतीत होता है। बीसवीं और इक्कीसवीं सदी के अंतराल में लिखे नए नवगीतों में पूर्ववर्ती सदी में लिखे गए नवगीतों से अधिक प्रखरता, प्रगल्भता के साथ उन्नत एवं प्रगुणित प्रगीतात्मकता पाई जाती है। आज के नवगीतों में युगीन वैचारिकी के साथ साहित्य और संस्कृति-विमर्श एवं मानवीय विकास के अनेक ऐसे तजवीज हैं जो विश्व - साहित्य की तुलना में भी किसी प्रकार कमतर प्रतीत नहीं होते। वस्तुतः अंतरराष्ट्रीय विमर्शों में नवगीत की

अभिव्यक्तियों का वजन आज क्रियात्मक तौर पर अपना खास मुकाम और वुक्कत रखता है। ऐसा मानना चाहिए कि वर्तमान समय में नवगीतकार समाज का सबसे महत्वपूर्ण व्यक्ति है क्योंकि वह सामाजिक संवेदनाओं को अपना स्पर्श देकर अधिक संवर्द्धित और संचलित करता है। यह नवगीतकार ही है, जिसके पास अतीत के विपुल अध्ययन और अनुभूति का विराट आत्मविश्वास एवं सर्जनात्मकता के प्रति गहरा संतोष है। समकालीन नवगीत अपने सृजन पक्ष एवं उसकी व्यापकता तथा वैश्विकता को लेकर, अत्यंत गंभीर है। नवगीत आज कविता की वह श्रेष्ठ एवं सर्वव्यापक विधा है, जो जीवन के सत्य को पहचानता हैं यही कारण है कि अनुभूति के माध्यम से यह अनुभव का संप्रेक्षण है।

इस पृष्ठभूमि को ध्यान में रखकर हमें यह स्वीकार करना चाहिए कि भारतीय साहित्य का विश्व में एक महत्वपूर्ण स्थान है और इस तथ्य से हमें अवगत, सहमत होना चाहिए। यह इसलिए कि उसमें हमारी भारतीयता विद्यमान, विराजमान है। हमें पहचानना चाहिए कि इस प्रकार लगातार एक पक्ष में पश्चिम नाम की रूप शिथिल इकाई को रखकर दूसरी ओर हम भारतीयता से परिपूर्ण लोकधर्मी साहित्य को पंगु बना रहे हैं। अत: इसी परिप्रेक्ष्य और प्रासंगिकता में हम नवगीत का अध्ययन अनुशीलन करें ताकि हम अहम्मन्यता और हीन भावना से बच सकें और भारतीय दृष्टि से परिचित हो सकें।

नवगीत भारतीय संवेदना का वाहक है और वह भी ऐसी संवेदना का जिसके मूल में वैसे मूल्य हैं, जो भारत के सांस्कृतिक इतिहास और अनुभव की उपलब्धियाँ है; ऐसी संवेदना, जिसको अभिव्यक्ति मिलने पर हर भारतीय यह अनुभव करता है कि यह उसी की अभिव्यक्ति है। यह इसलिए कि नवगीत में सहृदयता का गुण उसकी संवेदना में संश्लिष्ट होता है। वस्तुत: सहृदय होने का अर्थ सहज बोध और समुन्नत प्रतिभा से संपन्न होना है, तन्मय हो सकना, अनुभूति के उस केंद्र तक पहुँचकर उसे पहचानना और ग्रहण कर उसका संप्रेषण करना है।

नवगीत में काव्य की भावानुभूतियाँ यथार्थ जीवन की अनुभूतियों से अभिन्न हैं। इसीलिए वे सर्वदा सुखमय प्रतीत होती हैं। उनके काव्यात्मक क्रोध, शोक, पीड़ा, जुगुप्सा आदि से भी आनंद मिलता है। नवगीत में यह सहज क्षमता अथवा योग्यता है कि यह काव्यानुभूति में प्रवेश पा जाता है क्योंकि नवगीत में नए सत्य को संवेद्य बनाने की बेजोड़ क्षमता है। यथा:

*क्या करें बंधु*
*उस फागुनी गंध का*
*फूल झरने लगे*
*कोकिला मौन है*
*रूप धूमिल हुआ*
*आज सौगंध का*

(द्वार की दस्तकें/ वृजनाथ श्रीवास्तव)

विषय एवं भावों की दृष्टि से नवगीत मनोहारिता एवं विविधता लिए हुए है। इसका भाव सहृदयों के हृदयों को आसानी से आकृष्ट कर लेता है। प्रतीकों के गहरे विषय वर्णन उसकी बड़ी विशेषता है। इसी कारण यह अनायास ही जन जीवन को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। अपने चारों ओर के जीते-जागते मनुष्यों के जीवन में यह विधा तीव्रता से आगे बढ़ी है। नवगीत जीवन व्यवहार में मिलने वाले मनुष्य के साथ सहानुभूति दर्शाता है। निम्नवर्गीय परिवार, मजदूर, किसान, गरीब, अभावग्रस्त और बेबसों का मूर्तिकरण इसमें किया गया है। रोटी के साथ-साथ बँटवारा, जोड़-तोड़ एवं संपूर्ण स्थिति की दयनीयता और आम आदमी का दुख-दर्द इसकी अभिव्यक्ति की विशेषता है।

नवगीत ने न केवल मानवीय जीवन अपितु सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक क्षेत्र में व्याप्त विसंगतियों एवं विकृतियों को भी परिष्कृत करने की तत्परता दिखलाई है तथा सांप्रतिक बाजारवादी संस्कृति से पृथक जन-जीवन के सुख-दुख को अपना विषय-वस्तु बनाया है। इसने अपनी लोकोन्मुखी संवेदना और नई भाषा-लय में मानवीय जीवन के परिवेश और परिस्थितियों को अपने शब्दों में पिरोकर प्रत्येक धड़कन को लयात्मक बना दिया है। वास्ताविकता तो यह है कि नवीनतम कथ्य एवं अद्यतन संप्रेष्य अंतर्वस्तुओं को संप्रेषित करने में इस विधा ने अपने सामर्थ्य एवं नावीन्य का प्रमाण दिया है।

19वीं सदी के उत्तरार्ध से ही नवगीत अपनी नवीन शैली में भारतीय जीवनानुभूतियों की संपूर्ण समृद्धि और सामाजिक जीवन के परिवेश तथा परिस्थितियों के गहरे अनुभवों को अभिव्यक्त करता आ रहा है। कदाचित इसी सोच के परिप्रेक्ष्य में अनेक नवगीत संकलनों का प्रकाशन इस अंतराल में हुआ तथा उनमें भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति से संबंधित अनेक अभिव्यंजनाओं के साथ भूमंडलीकरण और औद्योगीकरण के प्रभाव में आकर भारतीय समाज किस प्रकार बदला और उसका प्रभाव भारतीय जीवन पर कितना पड़ा, महानगरीय सभ्यता के झपेटे में आकर गाँव का आदमी किस प्रकार बेबस और लाचार हुआ, उन सबों की अभिव्यंजना प्रचुरता से प्राप्त होती है। इन संकलनों के प्राक्कथनों में ऐसी मीमांसाएँ भी हैं। जो समकालीन साहित्य के ऐसे स्वरूप गढ़ते हैं, जिनमें भारतीय मिट्टी, हवा, पानी के रंग, रूप, गंध, स्पर्श, रस भरे पड़े हैं। इन संकलनों के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि नवगीत जीवन जीने के प्रति जिस राग को लेकर समग्र समाज के चिंतन के समक्ष आया, उसमें कवितात्मक आस्वादन की महिमा तो है ही, उससे भी अधिक नई चेतना, नई सोच और नए मिजाज का आग्रह है।

समग्रतः नवगीत अपने काव्यकथ्य, भाषा, शिल्प, काव्य-वैविध्य तथा शैली के साथ अपनी कलात्मकता से भी आधुनिक काव्य-परिदृश्य को प्रभावित करता है। इस विधा ने चाहे जिस विषय वस्तु का स्पर्श किया, उसके मूल में कविता की संवेदना की प्रचुरता रही है। लोकचेतना, लोकचित्त और लोक-सांस्कृतिक संपृक्ति से यह कभी विरत नहीं रहा। यह बात अलग है कि कविता की श्रेष्ठ विधा के रूप में स्वीकृत होने के बजाय इसे सिर्फ नवगीत के रूप में देखा गया। कितनी विचित्र बात है कि मुक्त वृतात्मक रचना नई कविता हो गई और जिसमें साहित्य के सभी विधान नए थे, उसे नवगीत कहकर उसकी अवज्ञा की गई। आज अंतर्विरोधों एवं विरोधाभासों से घिरा होकर भी इसने प्रत्युद्यम के प्रभाव को पर्याप्त कम किया है तथा प्रशंसापरक ढंग से देखने-परखने के प्रयास को आकर्षित किया है।

– ओ-27, सिविल टाउनशिप, राउरकेला, ओडिशा-769004

❑❑❑

# 21वीं सदी का हिंदी उपन्यास लेखन और महानगरीय बोध

**डॉ. संदीप रणभिरकर**

बीसवीं शताब्दीं का उत्तरार्द्ध हमारे लिए कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। विविध विमर्शों की होड़ ने चिंतन धारा को एक नूतन दिशा प्रदान की। भूमंडलीकरण अपनी तमाम अच्छाइयों-बुराइयों के साथ समूचे परिवेश को अपनी गिरफ्त में लेने लगा। फलत: 20वीं सदी के अंतिम दशक में सामाजिक परिवर्तन की गति सर्वाधिक तीव्र रही। विगत कई शताब्दियों ने उतने विस्तृत तरीके से मनुष्य को प्रभावित नहीं किया जितना बीसवीं शताब्दी ने। 21वीं सदी तक आते-आते बाजारवाद की गिरफ्त में सारी दुनिया आ गई और हम सभी बेचने-खरीदने को ही जीवन का साध्य मान बैठे। लुभावने विज्ञापनों का शोर और बाज़ार के तिकड़मों को सजा-सँवारकर जनसमुदाय के सामने परोसा जा रहा है। इन सारी गतिविधियों से कहीं न कहीं हमें बाध्य किया जा रहा है, रिश्तों से अधिक वस्तुओं को महत्व देने के लिए। पूंजीवाद की कोख से पैदा हुआ अमानवीकरण अब भूमंडलीकरण का मुखौटा लगाकर पूरे विश्व समुदाय में मानवीयता को नष्ट करते हुए केवल लेन-देन की दुनिया बना देना चाहता है। इस प्रवृत्ति को आज का कवि बड़े मोहक अंदाज में प्रस्तुत करता है। 'सोन चिरैया' के रूपक के माध्यम से कवि ने आज के बाजारवाद पर तीखा व्यंग्य कसा है-

*सोन चिरैया! सोन चिरैया!*
*उड़ने में कैसा लगता है*
*मुफ्त नहीं बोलूँगी, भैया,*
*कहने का पैसा लगता है।*[1]

इस परिदृश्य की व्यापक क्रीड़ास्थली मुख्य रूप से महानगर ही रहे हैं। निश्चित रूप से ये सारी गतिविधियाँ साहित्य के पारखी नजरों से ओझल नहीं हो सकतीं अर्थात् हिंदी में इन मुद्दों पर लिखे गए साहित्य की भरमार है। इन पहलुओं पर बातचीत करने हेतु उपन्यास सबसे कारगर विधा है। बाजारवाद की जंजीरों में कैद यह 21वीं सदी का समाज किन-किन सामाजिक और मानवीय मूल्यों से कटता जा रहा है और पश्चिम की भोगवादी संस्कृति का बिना सोचे-समझे अंधानुकरण कर रहा है इसकी भी व्यापक पड़ताल इस सदी के उपन्यासों में होती है। नई सदी में हिंदी उपन्यास लेखन ने गुणात्मक और मात्रात्मक दृष्टि से अभूतपूर्व वृद्धि की है। लेखकों द्वारा उपन्यास लेखन ट्रेंड में संरचनात्मक बदलाव को ध्यान में रखकर औपन्यासिक कथ्य का वर्गीकरण किया गया। नई सदी के उपन्यास लेखन के संदर्भ में पुष्पपाल सिंह लिखते हैं- "नई शती या कहें नई सहस्राब्दी के आगमन पर हम अपने साहित्य के नए प्रकल्प अवश्य निश्चित कर सकते हैं किंतु रचनाकार तो अपनी-अपनी तरह से ही अपने समय से साक्षात्कार कर सृजन में प्रवृत्त होगा। इसलिए सहस्राब्दी के प्रारंभ के साथ ही साहित्य रचना में कोई नया प्रस्थान-बिंदु रेखांकित किया जा सकता है, यह सोचना भी अविवेकपूर्ण होगा। परिवेश में जब सामाजिक, धार्मिक, वैज्ञानिक, प्रौद्योगिक, तकनीकी आदि स्थितियाँ बदलेंगी तभी साहित्य में उनकी प्रतिच्छवि रूपायित होगी, स्थितियों के सकार और नकार की स्थितियाँ स्वत: बनती चली जाती हैं।"[2]

वर्तमान दौर में प्राचीन सामाजिक ढाँचा टूट चुका है, पुराने आदर्श आज के संदर्भ में अपनी अर्थवत्ता खो चुके हैं। अब समाज न देहाती रहा है न शहरी, अब उसका संगठन ही नष्ट हो गया है। आजकल महानगर ही जीवन के केंद्र बने हैं। महानगरों में पनपने वाली जीवन-विधि का पूरे समाज पर प्रभाव पड़ता है, पड़ रहा है। जीवन के केंद्र में अर्थ की प्रतिष्ठा हो चली, परिणामतः स्पर्द्धा की भावना का विकास हुआ। स्पर्द्धा और अर्थ के आचारशास्त्र ने मनुष्य को संकीर्ण और छोटा बना दिया है। 21वीं सदी के उपन्यासों में शहरी परिवारों के बड़े ही अनुभूति प्रवण चित्र हैं और आधुनिक जीवन की उदासी, अकेलापन, अजनबीपन, ऊब, घुटन, संत्रास आदि का अंकन अत्यंत गहरे यथार्थ बोध से किया गया है। महानगरों में भूमंडलीकरण के परिणामस्वरूप संवेदना, संबंध और सामूहिकता की दुनिया में जो निर्मम ध्वंस हुआ है- तब्दीलियों का जो तूफान निर्मित हुआ है- उसका भी प्रामणिक एवं गहन अंकन इन उपन्यासों में देखा जा सकता है। साथ ही उपभोक्तावाद की क्रूरताओं का विखंडन, शोषित-प्रताड़ित जातियों के सकारात्मक उभार एवं नई स्त्री की शक्ति एवं व्यथा का दक्ष चित्रांकन भी इन उपन्यासों में है।

व्यक्ति महानगरों में अपने सपनों की गठरी लेकर जाता है किंतु उसके सपने मात्र सपने ही रह जाते हैं। राजीव सिंह के शब्दों में कहा जा सकता है-

*खुशियों की खोज में लोग निकलते हैं शहर में*
*वहाँ से मातम लेकर आना अब आम बात है*

अपने अधूरे सपने, अधूरी खुशियों के साथ व्यक्ति स्वयं को नितांत अकेला महसूस करता है। आपसी प्रतिस्पर्द्धा, भौतिकवाद और निरर्थकता बोध से संत्रस्त महानगरीय परिवेश में अकेलापन व्यक्ति की नियति बन जाता है। कितनी बड़ी विडंबना है कि आज का मनुष्य एक ओर दूसरे ग्रहों पर अपना अधिकार जमाना चाहता है, समूचे विश्व से जुड़ना चाहता है किंतु वैयक्तिक धरातल पर वह सब से टूटकर नितांत अकेला होता चला जा रहा है। भीड़-भाड़ से युक्त महानगरों में व्यक्ति के अकेलेपन को और अधिक गहराई से महसूस किया जा सकता है। 'रेहन पर रग्घू' के रघुनाथ साधन-संपन्न, भरा-पूरा परिवार होने के बावजूद बच्चों से उनकी दूरियाँ बनी हुई हैं। बूढ़े रघुनाथ ने अपनी सारी जिंदगी, सारी कमाई अपनों पर खर्च पर कर दी फिर भी उनको अपनों में अपने नहीं मिले। एक अकेलापन, परायापन उनके भीतर लगातार बना रहता है। उनका यह अकेलापन गाँव से, शहर से, परिवार से अंततः बच्चों से है। कभी-कभी तिलमिला कर कह उठते हैं- "शीला हमारे तीन बच्चे हैं लेकिन पता नहीं क्यों कभी-कभी मेरे भीतर ऐसी हूक उठती है जैसे लगता है- मेरी औरत बाँझ है और मैं निःसंतान पिता हूँ।"[3] ये बात रघुनाथ अपने उन बच्चों के लिए कह रहे हैं जो उनके जीवन के गुमान थे और उन्होंने बच्चों के भविष्य को सँवारने में अपनी सारी ज़िंदगी गँवा दी थी। बच्चों ने अपनी निजी स्वार्थ की खातिर उनको अकेलेपन की पीड़ा भुगतने को मजबूर कर दिया है।

उषा प्रियंवदा का उपन्यास 'भया कबीर उदास' की लिली अपने पारिवारिक संस्कारों के कारण स्वाभाविक रूप में किसी से रिश्ता नहीं बना पाती। फलतः वह अकेले ही जीवन यापन करती है। किंतु विदेशी भूमि पर रहने वाली इस आधुनिक स्त्री के जीवन में एक भयावह त्रासदी घटित होती है। उसे कैंसर हो जाता है। इस भयंकर बीमारी के साथ उसका युद्ध प्रारंभ हो जाता है जिसमें वह नितांत अकेली है, किंतु धीरे-धीरे वह सब कुछ स्वीकार कर लेती है -"मैं अकेली हूँ, और रंगस्थली में मेरा वास है। मैं सचमुच सब स्वीकार कर लेती हूँ, करना ही पड़ता है।"[4] इस भयंकर पीड़ा में उसके मिलने वाले तो बहुत हैं पर लिली की आँखों के आँसुओं को अपनी आँख में देखने वाले कहीं नजर नहीं आते- "उसे महसूस होता है कि वह जिस स्थान पर खड़ी है, वह बाकी संसार से कटकर अलग हो गया है, बीच में एक दुर्गम खाई बढ़ती जा रही है। संसार के नार्मल लोग 'अन्य' हो चले हैं, चैन से सोते हैं, उन्हें कल का डर नहीं। पहले कभी इतना अकेलापन नहीं लगा।"[5]

नई चेतना के संस्पर्श और नए विचारों की सुगबुगाहट से जब आस्थाएँ ढहने लगती हैं तब उन सारी मान्यताओं पर प्रश्नचिह्न लगा दिया जाता है। परिणामस्वरूप अजनबीपन की समस्या धीरे-धीरे उसके मानस में गहराने लगती है। इस प्रकार मशीनी सभ्यता ने आज मनुष्य और जगत के बीच अलगाव की स्थिति उत्पन्न कर दी। इससे उबरने के लिए मनुष्य छटपटा रहा है।

महानगरीय परिवेश में सबके साथ होने के बावजूद व्यक्ति स्वयं को सबसे कटा हुआ महसूस कर रहा है। सभी रिश्ते-नातों के प्रति मन में एक अजनबीयत घर कर गई है। वर्षों से जिन सबंधों का वह निर्वाह कर रहा था उन संबंधों के प्रति गहरी उदासीनता उसके मन में व्याप्त हो गई है। 'रेहन पर रग्घू', 'दौड़', 'उधर के लोग' आदि उपन्यासों में जिन परिवारों का चित्रण उपन्यासकारों ने किया है उसमें अजनबीपन की भावना मुखर दिखाई पड़ती है। 'दौड़' में राकेश और रेखा तथा 'रेहन पर रग्घू' में रघुनाथ अजनबीपन की पीड़ा से जूझते हुए दिखाई देते हैं।

महानगरों में घुटन, संत्रास, निराशा, शून्यता आदि का बोध गहराता जा रहा है। घुटन के कारण निराशा से घिरा हुआ व्यक्ति स्वयं को एक शून्य की स्थिति में पा रहा है। परिणामत: उसे संत्रास का शिकार होना पड़ रहा है। सदी के अंतिम दशक में भारत में हुए आर्थिक फेरबदल से भारी संख्या में मल्टीनेशनल कंपनियाँ निवेश को उन्मुख हुईं। नि:संदेह भारी निवेश से रोजगार में बढ़ोत्तरी हुई है लेकिन केवल प्रशिक्षितों के लिए, वो भी इस शर्त के साथ कि यंत्रवत बनकर कार्य करना होगा। अकुशल नागरिकों के दरवाजे आज भी बंद हैं थोड़ा-बहुत खुले भी हैं तो रास्ते बहुत संकरे हैं। यह बड़ी-बड़ी बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ कर्मचारियों पर इतना मनोवैज्ञानिक दबाव बनाए रहती हैं कि उनका जीवन घुट-घुट कर ही बीतता है। जिसकी अंतिम परिणति ये है कि बहुत सारे कर्मचारी विविध प्रकार के मनोवैज्ञानिक रोग के शिकार होते जाते हैं। 'एक ब्रेक के बाद' उपन्यास ऐसी ही विशाल कंपनियों एवं बाजार की नब्ज को टटोलता हुआ लोकप्रिय उपन्यास है। लेखिका ने कर्मचारियों के मनोभावों को बहुत ही तार्किक और संजीदगी से पढ़ा है- "बड़ी कंपनियों में काम करने वाले इतने तनाव में रहते हैं जैसे कि प्रेशर-कुकर में बंद हों। ऑफिस की पॉलिटिक्स, तो कभी ऑफिस में बॉस से खटपट, कभी प्रमोशन की चिंता - हर आदमी जैसे फटने की कगार पर रहता है। बहुत सी कंपनियों ने अपने दफ्तर में 'काउंसलिंग' करने को मनोचिकित्सक बैठा लिए हैं।"[6]

परिवार समाज की एक ऐसी संस्था है जिसे मानव ने आत्मसंरक्षण, वंशवर्धन और जातीय जीवन के विकास हेतु स्थापित किया है। इसीलिए भारतीय जीवन प्रणाली में परिवार को अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। परंतु कालप्रवाह में वर्तमान भौतिक युग में समाज में विभिन्न कारणों से बड़ी तीव्र गति से परिवर्तन आ रहे हैं। वर्तमान परिवेश में महानगरों में सामूहिक संस्थाओं का पारंपरिक महत्व, जले हुए मोम की तरह पिघलकर समाप्त हो रहा है। 'उधर के लोग' में अजय नावरिया ने बताया है कि दिल्ली जैसे महानगर की जीवन शैली कितनी एंकांगी हो गई है, परिवार का मतलब है पति-पत्नी और बच्चे। माता-पिता, भाई-बहन, चाचा-चाची जैसे रिश्ते तो बस नाम के रह जाते हैं। वे उपन्यास में लिखते हैं कि -"वंदना की माँ से चिक-चिक लगी रहती थी। माँ उससे घर के काम में मदद की उम्मीद करती थी। वंदना मदद करती भी थी, पर उसे काम की आदत ही नहीं थी। माँ उसे कोई काम देती, तो वह पाँच मिनट के काम में घंटा भर लगा देती। माँ उस पर झल्लाती और मुझे ताने मारती। वंदना के पिता चार्टेड एकाउंटेंट थे और काफी पैसे वाले थे। वंदना, माँ के रूखे व्यवहार से तंग आकर मुझे खरी-खोटी सुनाने लगी थी। माँ और पत्नी के झगड़े के बीच मैं पिस गया था।"[7]

महानगरों में व्यक्तिवाद और स्वार्थपरता के चलते दरकते रिश्तों को देखा जा सकता है। आज रिश्ते सिली हुई जिल्दबंद किताब से न होकर ऑलपिन से जुड़े खुले पन्नों से हो गए हैं, जो हवा के छोटे हलके झोंकों से फड़फड़ाने लगते हैं या ऑलपिन से अलग होकर बिखर जाते हैं। कई रिश्तों ने तो समझौते की शक्ल ले ली है। पति-पत्नी का संबंध भी आज महज औपचारिक रूप में विवशतावश ढोया जा रहा है। 'उधर के लोग' उपन्यास के प्रोफेसर साहब ऐसे ही भावुक प्रेम में फँसे हैं। चाहकर भी इस रिश्ते को कोई नाम नहीं दे पा रहे हैं। पत्नी से अनबन थी, उन्हें यह संबंध सहारा तो दे रहे था पर सुकून नहीं आ रहा था। फिर भी दोनों एक दूसरे के सहज प्रेम की डोर से बंधे थे। वो महिला एक कॉलगर्ल थी लेकिन प्रोफेसर की नजरों में कोई दुराग्रह नहीं था। वे कहते हैं कि - "आयशा और मेरे रिश्तों में, इन सब बातों के तूल पकड़ने की जगह ही नहीं है।' मैंने इतनी सहजता से, इसे कहने की कोशिश की थी,

ताकि वह ताने की शक्ल में जाने की बजाय एक तथ्यात्मक कथन की तरह पेश हो। हम दोनों अपनी हदें जानते हैं। हम दोस्ती का मतलब 'अनऑथराइज्ड एनक्रोचमेंट' नहीं मानते, एक दूसरे के 'पर्सनल स्पेस' का ख्याल रखते हैं।"[8] आज के डिज़िटल समाज में मानवीय संबंधों के परिवेश में जो आभासीपन आया है वह लगातार विकृत और जर्जर समाज का ही निर्माण करेगा न कि सरल एवं स्वस्थ समाज का।

महानगरों की चकाचौंध में बाज़ार ने सभी को प्रभावित किया है। यह बाजार मंडी से अब सीधे घरों में और लोगों के जीवन में प्रवेश कर चुका है। जावेद अख्तर 'तरकश' में बाजार के इसी हस्तक्षेप के संबंध में लिखते हैं-

*एक ये घर जिस घर में मेरा साज़-ओ-सामाँ रहता है*
*एक वो घर जिस घर में मेरी बूढ़ी नानी रहती थी*[9]

रिश्तों में बाजारीकरण के प्रवेश को ममता कालिया ने 'दौड़' उपन्यास में प्रभावी रूप में चित्रित किया है। जब रेखा अपने बेटे पवन से मिलने राजकोट जाती है तो पवन और स्टैला माँ को खुश करने के लिए एक महँगी चद्दर उसे उपहार में देते हैं। जब माँ उसे लेने से मना कर देती है तो बाजारवाद का चेहरा सामने आता है। पवन कहता है- "आपको पता है हमारे तीन हजार रुपए इस गिफ्ट पर खर्च हुए हैं। इतनी कीमती चीज की कोई कद्र नहीं है आपको।"[10] परंतु इसमें पवन का कोई दोष नहीं है। राकेश और रेखा दोनों पर ही बाजार का ऐसा प्रभाव पड़ता है कि वे अपने बच्चों को पूर्ण रूप से बाजारवाद का अंग बना देते हैं। राकेश-रेखा व पवन-स्टैला की सोच में इसी वजह से गहरा अंतर दिखाई देता है। इसी बाजारवाद के चलते उपभोक्तावादी संस्कृति लोगों पर हावी हो चुकी है। आज का युवा शहरों में जाकर अधिक से अधिक धन कमाना चाहता है। ऐसे में उसके लिए नैतिकता के कोई मायने नहीं हैं। पवन अपने पिता से कहता है- "सच तो यह है पापा जहाँ हर महीने वेतन मिले वही जगह अपनी होती है और कोई नहीं।"[11]

महानगरों में अर्थकेंद्रित समाज व्यवस्था की क्रूर मानसिकता को देखा जा सकता है। भौतिक सुख-सुविधाओं के प्रति बढ़ते आकर्षण से अर्थ प्राप्ति ही मनुष्य का चरम लक्ष्य बनता जा रहा है। समाज में प्रतिष्ठा और सम्मान की कसौटी मानवमूल्य न होकर केवल भौतिक समृद्धि होती जा रही है। हमारे सभी सामाजिक संबंधों एवं रिश्तों पर अर्थतंत्र हावी हो गया है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे सभी संबंधों पर अर्थ का विषधर कुंडली मारे बैठा है। 'दौड़' उपन्यास में पवन कुछ दिन घर रहने आता है तो जाते हुए माँ के हाथ में चेक थमाता है, क्योंकि उसके आने से घर-खर्च में वृद्धि हुई थी। वह माँ की ममता का भी चेक के माध्यम से हिसाब चुकाता है। सोनी जी की मृत्यु पर उनका अमरीका रहने वाला बेटा भारत नहीं लौटता और किराए के बेटे से अंत्यविधि निपटाने को कहता है। आज अर्थ ने हर संबंध, हर भावना को लगभग निगल लिया है। तुरंत एक झटके में अमीर बनने का ख्वाब सभी के मन में है। महानगरों के अधिकांश युवाओं के मन को प्रदीप सौरभ बारीकी से पढ़ने की कोशिश करते हैं- "कॉल सेंटरों में आने वाला हर नया युवा कॉल सेंटर की चमक से बच नहीं पाता है। एक तो उम्र कच्ची होती है और अनुभव में अनाड़ी होते हैं। इस उम्र में जेब भरी हो तो कुछ भी करने में फिर हिचक कैसी है। कॉल सेंटरों में काम करने के लिए बहुत बड़ा ज्ञानी होने की जरूरत नहीं है। बारहवीं पास कर परसुइंग ग्रेजुएशन का बायोडाटा देकर नौकरी मिल जाती है। योग्यता सिर्फ अंग्रेजी जानना है।"[12] जब इन युवाओं की इस तरह कम उम्र में ही जेब भरी होगी तो बाजार अपना खेल खेलेगा ही।

महानगरीय जीवन की भागादौड़ी ने समाज को बहुत हद तक संवेदनशून्य बना दिया है। नई सदी में मजबूत होते स्वार्थवादी परिवर्तनों के कारण धीरे-धीरे हम सभी मानसिक विकलांगता के शिकार हो रहे हैं। अमानवीय एवं संवेदनहीन होते समाज को काशीनाथ सिंह ने यथार्थ रूप में अभिव्यक्त किया है- "मान लो, किसी के घर में कोई चोर घुस आए, किसी के क्या मेरे ही घर में चोर घुस आए और वह भी अकेले, बिना किसी साथी के, औज़ार के; डाकू घुस आए- बिना राइफल बंदूक के अकेले, रात बिरात तो छोड़ो, खड़ी दोपहर में, कोई बलात्कारी ही घुस आए दिन दहाड़े और मुझे उठाकर ले जाए पार्क में और मैं चिल्लाऊँ कि

बचाओं! बचाओं! तो कौन सुनेगा? (ज्यादातर बूढ़े या तो बहरे हैं या ऊँचा सुनते हैं) कौन दौड़ेगा (ज़्यादातर घुटनों और जोड़ों के दर्द से परेशान हैं) कौन देखेगा (ज़्यादातर मोतियाबिंद का आपरेशन कराके आँख पर हरी पट्टी बाँधे हैं), यह सब न कर सके तो खड़ा होकर चिल्लाएँ तो सही (ज़्यादातार की कमर झुकी है और मुँह में दाँत नहीं हैं, वे गुगुआ तो सकते हैं, चिल्ला नहीं सकते)।"[13] प्रतीकात्मक रूप में उपन्यासकार ने पंगुता का शिकार होते समाज का जीवंत चित्रण किया है। महानगरीय परिवेश में किसी को फुर्सत नहीं कि वो अपने आसपड़ोस झाँके। अत: नाक की सीध चलना और कई मामलों को नजरअंदाज करना महानगरों में बसने वालों की विवशता बन चुकी है, क्योंकि वे किसी मामले में फँसने की जोखिम नहीं लेना चाहते।

नई सदी में महानगरों में अपसंस्कृतिकरण को भी तीव्रता से अनुभव किया जा सकता है। आज परंपरा, संस्कृति, आदर्श, मूल्य जैसे शब्द अपनी अर्थवत्ता खो चुके हैं। यदि कोई इनकी दुहाई देगा तो उसे पिछड़ा माना जाएगा। शहरों में आज नई संस्कृति उदयमान है। 'मुन्नी मोबाइल' उपन्यास में दिखाया गया है कि कैसे दिल्ली जैसे महानगरों पर एकाएक बाजारवादी संस्कृति हावी होती गई। कैसे सुंदरता के पैमाने हमारी अपनी परंपरा से हटकर तय होने लगे और किस-किस तरह की पार्टियों में नई पीढ़ी जीने लगी है। इसकी यहाँ खूब चर्चा की गई है। भूमंडलीय संस्कृति कैसे इन महानगरों पर अपना रंग चढ़ा रही है। इसका यथार्थ चित्र खींचते हुए लेखक प्रदीप सौरभ अपने उपन्यास में लिखते हैं- "लड़की खास इंप्रेसिव नहीं है। लेकिन है बिंदास। पाँच फुटी उस लड़की के बाल बरगंडी और लटें गोल्ड हैं। दुबली होने के लिए कान में आईपॉड नैनों लगाकर छत पर ब्रिस्क वाक करती है। आईपॉड से कान खाली होते हैं तो मोबाइल उसकी जगह ले लेता है। जंक फूड पर पली है। दाल-भात से अगर वास्ता पड़ा होगा तो बचपन में ही। पिज्जा मारगेरिटा उसकी पहली पसंद है। डोमिनो से लेकर पिज्जा हट तक सभी वेंडर उसके घर पर आमतौर पर खड़े रहते हैं। कभी-कभी उसके टैरेस पर पार्टियाँ भी होती हैं। हल्का म्यूजिक भी होता है। सिगरेट के छल्लों से टैरेस भर जाता है। पार्टी जैसे-जैसे परवान चढ़ती है बियर के केन नीचे गिरना शुरू हो जाते हैं।"[14]

संस्कृति के साथ-साथ आज नैतिकता के भी मानदंड बदल गए हैं। इस नई नैतिकता में श्लील-अश्लील के कोई मायने नहीं हैं। फैशन के सम्मुख सब कुछ धराशायी हुआ है। महानगरों में स्वतंत्रता अब स्वच्छंदता-का रूप ले चुकी है। 'रेहन पर रग्घू' की सरला भी विवाह पूर्व संबंध को जायज ठहराती है चाहे वो मात्र आनंद और अनुभव के लिए ही क्यों न किया गया हो- "शादी के पहले यही चाहती थी सरला। शादी के बाद तो यह विश्वासघात होगा, व्यभिचार होगा, अनैतिक होगा। जो करना है, पहले कर लो। अनुभव कर लो एक बार। मर्द का स्वाद! एक एडवेंचर! जस्ट फॉर फन।"[15] पुरुष भी मौका भुनाने में लगा रहता है वह स्त्री को आश्वासन देता है कि अनैतिक संबंध बनाने में अनैतिक कुछ नहीं है। परिणामों की भी कोई चिंता नहीं है क्योंकि सब कुछ आज आसान हो गया है। अत: किसी बात का कोई भय नहीं रहा है- "तुझे डर किस बात का है? ज्यादा से ज्यादा प्रैगनेंट ही तो हो सकती है। ऐसा कुछ हुआ तो अबार्शन करवा लेंगे। इतना भी क्या हो गया? तू तो ऐसे कर रही है जैसे सारी उम्र तुझे वर्जिन ही बने रहना था। या फिर किसी और से.....।"[16] अत: जीवन मूल्यों का पतन चरम पर है।

महानगरों में स्त्री-शिक्षा, स्वतंत्रता, आत्मनिर्भता, अधिकारों, के प्रति सजगता, समानता आदि के रूप में स्त्री-सशक्तीकरण को देखा जा सकता है। महानगरों में स्त्री घर एवं घर के बाहर दोनों जगह मोर्चा संभालती है। उसने घर के बाहर भी अपनी महत्ता प्रमाणित की है। सजग महानगरीय स्त्री ने जहाँ घर से बाहर आकर अलग मकाम बना लिया किंतु इस बाहरी दुनिया के खतरे और चुनौतियाँ भी कम नहीं हैं। कामकाजी नारी की समस्याएँ भी अपनी जगह हैं। साथ ही जो स्त्रियाँ गाँव से शहर का रुख करती हैं तो इनकी चाल-ढाल, रहन-सहन में तीव्र परिवर्तन आ जाता है। वे पूर्णत: शहरी रंग में रंग जाती हैं। प्रदीप सौरभ लिखते हैं कि "ऐसी ही राधा की कहानी है। बिहार के छोटे शहर से आई थी। ट्रेनिंग के समय सलवार-कुर्ता पहनती थी। नजरें झुकी रहती थीं। लड़कों से बात करने में शर्म आती थी। पूरी कस्बाई मानसिकता थी। छह महीने बीतते-बीतते राधा पर कॉल सेंटर का माहौल सिर चढ़कर बोलने लगा। छोटे कपड़े शरीर पर टक गए।

सलवार सूट कहीं दूर छूट गया। हाथों में सिगरेट आ गई। डिस्कों में आना-जाना शुरू हो गया। बॉयफ्रेंड भी बन गए। एक साथ उसने दो-दो बॉयफ्रेंड बनाए हुए थे।"[17]

समग्रत: महानगरीय जीवन-शैली, व्यक्तिवाद का प्राधान्य, स्वार्थवादी प्रवृत्ति, महानगरीय समस्याएँ, उन समस्याओं से जूझते लोगों की मानसिकता, पल-पल परिवर्तित दौड़ती जिंदगी, अकेलापन, अजनबीपन, घुटन, संत्रास, अर्थ की महत्ता, बाजारवाद, उपभोक्तावाद, अपसंस्कृतिकरण, जीवनमूल्यों, आदर्शों का पतन, पारिवारिक विघटन, परिवतर्तित रिश्ते-नाते आदि को 21वीं सदी के उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में अत्यंत प्रभावी रूप में उकेरने का प्रयास किया है। आज व्यक्ति की परिधि -'सर्व' से सीमित होकर 'स्व' तक केंद्रित हो गई है। सर्वत्र वैयक्तिकता व्याप्त हो गई है और व्यक्ति अस्मिता की खोज में भटक रहा है। महानगरों में आधुनिक मनुष्य की संपूर्ण दृष्टि और विचार प्रक्रिया में अंतर आया है। फलस्वरूप उसकी नीति विषयक धारणाओं में भी परिवर्तन आया है। इन सभी परिवर्तित स्थितियों का सूक्ष्म निरूपण 21वीं सदी के उपन्यासों में देखा जा सकता है। अंतत: बशीर बद्र के शब्दों में कहा जा सकता है-

*है अजीब शहर की ज़िंदगी न सफ़र रहा न क़याम है।*
*कहीं कारोबार सी दोपहर कहीं बद-मिज़ाज सी शाम है।*

**संदर्भ सूची**


1. सं. रवींद्रनाथ मिश्र, इक्कीसवीं सदी का हिंदी साहित्य समय, समाज और संवेदना, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2011. पृ. सं. 74

2. पुष्पपाल सिंह, 21वीं शती का हिंदी उपन्यास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016 पृ. सं. 43

3. काशीनाथ सिंह, रेहन पर रग्घू, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ. सं. 89

4. उषा प्रियंवदा, भया कबीर उदास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृ. सं. 65

5. वही, पृ. 69

6. अलका सरावगी, एक ब्रेक के बाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृ. सं. 117

7. अजय नावरिया, उधर के लोग, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृ. सं. 31

8. वही पृ. सं. 82

9. जावेद अख्तर, तरकश, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 35

10. ममता कालिया, दौड़, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014 पृ. 61

11. वही, पृ. सं. 45

12. प्रदीप सौरभ, मुन्नी मोबाइल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ. सं. 112-113

13. काशीनाथ सिंह, रेहन पर रग्घू, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ. सं. 108

14. प्रदीप सौरभ, मुन्नी मोबाइल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ. सं. 110

15. काशीनाथ सिंह, रेहन पर रग्घू, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ. सं. 31

16. सुषम बेदी, मोरचे वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006, पृ. सं. 18

17. प्रदीप सौरभ, मुन्नी मोबाइल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ. सं. 112



– सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, राजस्थान केंद्रीय विश्वविद्यालय,
बांदरसिंदरी, किशनगढ़-305801, जिला-अजमेर (राजस्थान)


❑❑❑

# भारतीय लोकगीतों का नया अवतार: चटनी संगीत

**डॉ. चंद्रकांता किनरा**

महात्मा गांधी ने कहा था 'लोकगीत संस्कृति के पहरेदार होते हैं', दूसरे शब्दों में इन्हें राष्ट्र की संस्कृति को जानने का सुरीला मार्ग कहा जा सकता है। जनमानस की आत्मा में रचे और बसे हुए लोकगीत सुख-दुख के भावावेश में पहाड़ी झरने की तरह फूट पड़ते हैं। यह प्रस्फुटन नैसर्गिक होते हुए भी अपने समय और संस्कृति का द्योतक होता है।

उन्नीसवीं सदी में ब्रिटिश शासक अपने उपनिवेशों- त्रिनिदाद और टौबेगो, गुयाना, सूरिनाम, जमेका तथा अन्य कैरीबियाई देशों-फीजी, मॉरीशस आदि में गन्ने के खेतों की देखभाल के लिए भारतीय श्रमिकों को लाए। एग्रीमैंट के तहत बिहार, उत्तर प्रदेश, बंगाल आदि प्रदेशों से सात समुंदर पार पहुँचे 'गिरमिटिया' श्रमिकों की दिनचर्या कठिन थी। अपने गाँव समाज से बिछड़े हुए, खेतों में दिनभर कठिन परिश्रम से पस्त इन प्रवासी-श्रमिकों के मुख से साँझ घिरते ही 'कजरी' 'बिरहा' 'चैती', 'झूला' 'बाहरमासा' के बोल बरबस गीत बनकर निकल पड़ते थे- बुवाई, रोपाई, जन्म, विवाह संस्कार संबंधी गीतों की सौंधी गंध ने इन कुलियों के मनोबल को बनाए रखने में बहुत बड़ी भूमिका निभाई।

एक निश्चित समय तक इन टापुओं में रहते-रहते इन जहाजी श्रमिकों का मन धीरे-धीरे लगने लगा, उन्होंने यहाँ की स्थानीय भाषा क्रियौल सीख ली। उनकी आने वाली पीढ़ियाँ शिक्षित होने लगी लेकिन घर परिवार में भोजपुरी शब्दों का प्रयोग होता रहा। क्रियौल में भोजपुरी के शब्दों और मुहावरों के छौंक से भाषा का एक नया रूप सामने आया तथा लय और ताल की दृष्टि हारमोनियम, ढोलक, धनताल, तासा आदि परंपरागत वाद्यों के साथ इलैक्ट्रिक गिटार, सिंथेसाइज़र और स्टील के ड्रमों के प्रयोग ने संगीत की एक अनूठी शैली 'चटनी संगीत' को जन्म दिया। कच्चे आम के साथ नमक मसालों के मिश्रण से बने भारतीय व्यंजन 'चटनी' की तरह मिश्रित और तीखी चटपटी संगीत शैली का नामकरण 'चटनी संगीत' के रूप में हुआ।

बीसवीं सदी के आरंभ से चटनी गीतों के बोल गन्ने के खेतों, मंदिरों, विवाह उत्सवों में सुनाई देते थे।

इन गीतों की प्रकृति धार्मिक होने का कारण यह था कि अधिकांश चटनी गायक, अपनी गायकी का आरंभ मंदिरों से करते थे, जहाँ भजन, कीर्तन भोजपुरी में होता था जैसे ठुमरी शैली में हनीफ मुहम्मद द्वारा प्रस्तुत यह गीत-

*आ ऽऽ ऽऽऽऽ आ ऽऽऽऽ ऽ*
*पवन तनय संकट ऽऽऽऽ हरन ऽऽऽ*
*मंगल मूरत रूप*
*ऐ ऽऽऽऽऽऽ ऽऽ*
*राम लखन सीता ऽऽऽ सहित*
*हृदय बसौ सुर भूऽऽऽप*
× × × ×
*ऐ नंदकुमार ऽऽ ऐ नंद कुमार*
*हमारे मन बसि गए नंदकुमार ऽऽ*
*ठाढ़े कदम्म तर मुरलि बजावति*
*गावत राग मल्हार*

मूलत: धार्मिक होते हुए भी लय और ताल में बंधे ये गीत श्रोताओं को नाचने के लिए विवश करते थे।

1968 से पहले चटनी संगीत का कोई रिकार्ड उपलब्ध नहीं था। इसी वर्ष साउथ अमरीका के एक छोटे से देश सूरिनाम से आए रामदेव चैतो का गीत रिकार्ड हुआ। 'किंग ऑफ सूरिनाम नामक' उनके एलबम ने न केवल सूरिनाम अपितु सभी कैरीबियाई देशों में धूम मचा दी। इस संग्रह के धार्मिक गीतों की तरह उनकी एक अन्य रचना 'रातै सपना' बहुत लोकप्रिय हुई-

*रातै सपना*
*रातै सपना दिखाए पिया हमको*
*रतिया सपना, रातै सपना*
*ना मौरे अंगना में निबिया के पेड़वा*
*,, ,, ,, ,,*

इस अनूठे मिश्रित संगीत में लगभग एक दशक बाद महिला गायिका द्रौपती के आने से एक नया मोड़ आया। इनके बहुचर्चित गीतों में से एक लोकप्रिय 'सोहर' प्रस्तुत है-

*सोने के खरूऊआं*
*राजा रामचंद्र मैय्या से,*
*अरज करे मैय्या से,*
*मैय्या हम तो जाईब मधुबन के*
*सीतल कैसे रखियऊ हो ऽऽऽऽ*

विवाह गीतों पर आधरित इनके एलबम 'लेट अस सिंग एंड डांस' में गायन और नृत्य के अपूर्व संयोजन ने लोकप्रियता का नया कीर्तिमान स्थापित किया।

'चटनी संगीत' की पहचान बनाने और त्रिनिदाद तथा टौबेगो में उसे जन सामान्य तक पहुँचाने का श्रेय सातवें दशक के कला प्रेमी मोइन मोहम्मद और उनके भाई को है। इन्होंने रामदेव चैतो और द्रौपती जैसी चटनी के महारथियों के 'शो' आयोजित किए। इनके एक भाई कमालुद्दीन- जो स्वयं रेडियो कलाकार थे, ने भारतीयों के लिए प्रसारित किए जाने वाले कार्यक्रम में 'चटनी संगीत' को शामिल करवाया।

सुंदर पोपो के हिंदी और अंग्रेजी मिश्रित गीतों ने चटनी संगीत को नया आयाम दिया। त्रिनिदाद के बारकपुर से आए सुंदर पोपो के 'हम न जइबे' 'सुराजी', 'फिल्लौरी बिना चटनी' तथा सबसे अधिक 'नाना और नानी' गीत लोकप्रियता के चरम तक पहुँचे। 'नाना और नानी' नामक चर्चित गीत में सुंदर पोपो ने दूर गाँव में बसे वृद्ध दंपत्ति की दिनचर्या को मज़ाकिया लहज़े में प्रस्तुत किया।

सैम बूदराम इस दौर के एक अन्य प्रसिद्ध चटनी कलाकार थे। परंपरागत 'बिरहा' शैली में रचित उनके एक गीत के बोल हैं-

*अए ऽऽ रामजी की बगिया ऽऽ*
*सीता के फुलवाऽऽरी*
*लछि मन देऊरा*
*बैठऽ रखवारी*
× × ×
*सोनवा के मृगवा, सुतेला फुलवारी*
*अरे ऽ मृगवा के चाल मेरे मन भाई*
*राम जी की बगिया .....*
*धनुष बाण लिए आए रघुराई*
*मृगवा के पीछे गएऊ रघुराई*

इस युग के अन्य चटनी कलाकारों लिलीजॉन लाखन करिया, आनंद यानकरण, सोनी मान आदि के गीत रिकार्ड कर पूरी दुनिया में उन्हें पहुँचाने का श्रेय रोहित जगेसर नामक व्यक्ति को है। व्यवहार और व्यापार कुशल रोहित जगेसर ने 1980 के दशक में दुनिया भर के बड़े-बड़े स्टेडियम और क्रिकेट क्षेत्रों में 'चटनी संगीत' के 'लाईव कॉन्सर्ट' आयोजित किए।

चटनी में पश्चिमी संगीत वाद्यों-गिटार, ऑरकेस्ट्रा आदि के अधिकाधिक प्रयोग ने इसकी लोकप्रियता के ग्राफ को और बढ़ा दिया। 'कंचन और बाबला' के 'कुछ गड़बड़ है' एलबम की 1980 में रिकॉर्ड तोड़ बिक्री हुई।

इसकी सफलता देखकर अन्य चटनी कलाकारों ने भी कैलिप्सों और अमरीकन लय ताल का समावेश करके अपनी संगीत शैली को और चटपटा बनाया और उसे नाम दिया 'इंडियन सोका'। कार्निवाल सेशन में त्रिनिदाद और टोबेगो से 'सोका प्रतियोगिताएँ' होने लगी। त्रिनिदाद की बहुचर्चित गायिका द्रौपती रामगोनाई के गीतों को कामुक और उत्तेजक कहकर उनकी आलोचना की गई लेकिन जो समाज में प्रचलित था उसी को गीतों में ढालने वाली द्रौपती रामगोनाई को बाद में 'चटनी क्वीन' की उपाधि से नवाज़ा गया।

चटनी संगीत के प्रति लोगों की दीवानगी का आर्थिक लाभ उठाने के लिए बीसवीं शती के अंतिम दशक में बहुत सी संगीत कंपनियाँ सामने आईं। विशेष रूप से अमरीका और कनाडा की जिन म्यूज़िक कंपनियों ने उभरते हुए चटनी कलाकारों को मौका दिया, उनमें जैमकन क्रेज़ी रिकाड्र्स, स्पाइस आइलैंड रिकाड्र्स, मोहाबिर रिकॉर्डर्स के नाम उल्लेखनीय हैं। संगीत क्षेत्र में सक्रिय इन कंपनियों के सहयोग और न्यूयॉर्क में 'सोका पैराडाइज़' और 'कैलिप्सो सिटी' आदि नाइटक्लबों की स्थापना से इस संगीत शैली का प्रसार और बढ़ गया।

बॉलीवुड यानी हिंदी सिनेमा पर भी चटनी का थोड़ा सा प्रभाव 1980 के दशक में दिखाई दिया। पिछले कुछ वर्षों में डायस्पोरा देशों में विशेष रूप से त्रिनिदाद में साईंबाबा की स्तुति के लिए आयोजित संकीर्तनों ने चटनी संगीत को बढ़ावा दिया है। भारतीय रागों पर आधारित, ऊँची पिच पर गाए जाने वाले इन भक्तिगीतों में तेज़ गति से कुछ पंक्तियों की बार-बार आवृत्ति श्रोताओं को चटनी संगीत की भावभूमि पर ला खड़ा करती है।

चटनी संगीत मॉरीशस की धरती पर 'सेगा भोजपुरी' के गलियारे से होते हुए आगे बढ़ा। अफ्रीकी देशों से आए श्रमिकों ने यूरोपीय प्रभाव को आत्मसात कर जिस गायन और नृत्यशैली को जन्म दिया वह 'सेगा' कहलाया। 'सेगा भोजपुरी' शैली में रावान्ने, मारवान्ने और ट्राइयेंगल आदि वाद्यों के साथ-साथ परंपरागत भारतीय संगीत वाद्यों ढोलक, तबला, हारमोनियम का अपूर्व सामंजस्य दिखाई देता है।

भोजपुरी के सेगा के रंग में रंगने की अनिवार्यता की चर्चा करते हुए मॉरीशस की महिला गायिका बिस्वानी दीपोय ने कहा कि "हम अपने गीतों की रचना सेगा की लय पर नहीं करेंगे तो कोई भी इन्हें नहीं सुनेगा"। मॉरीशियन चटनी' एलबम का एक गीत उदाहरण के लिए लिया जा सकता है-

*गामात में जब जाइबे*
*भोजपुरी गाइकै*
*निसा डालिके*
*सब कुई को नचाइके*

सन् 1950 तक औपनिवेशिक सत्ता और कैथोलिक चर्च ने इस संगीत शैली का तिरस्कार किया लेकिन धीरे-धीरे पार्टियों में इसने अपनी जगह बना ली। 'सेगा भोजपुरी' से 'सेगा चटनी' और फिर 'सेगा बॉलीवुड' के रूप में इसका विकास हुआ। नब्बे के दशक में 'भोजपुरी ब्यायज़' 'भोजपुरी लवर्स', 'भोजपुरी बाजा बाजे ब्वायज़', 'मसाला चटनी' 'मिक्स चटनी' आदि संगीत समूहों ने चटनी संगीत की धूम मचा दी। इन दलों में महिला नृत्यांगनाओं के आने से यह अधिक जीवंत हो उठा।

लोक संगीत के क्रियोलाइज़ेशन में 'संगीत प्रबंधकों' की महती भूमिका है। चटनी के पल्लवित पुष्पित करने में 'हैनरिऑट फिगारो', जोज़ मैथ्यु, क्लैरो बिग्निऔक्स और भारतीय मॉरिशियन लोगों में रवीन सोवंबर के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

संस्कृति के उत्थान के लिए प्रयासशील मॉरीशस की जानी मानी हस्तियाँ सुश्री सरिता बूधू और सुश्री सुचिता रामदीन ने इन नृत्यकला के पुनरुद्धार के लिए अथक प्रयास किए हैं। 'महात्मा गांधी इंस्टीट्यूट' 'मॉरीशस भोजपुरी इंस्टीटयूट' में इससे जुड़े औपचारिक और अनौपचारिक कार्यक्रमों का आयोजन करके वेषभूषा और नृत्यशैली के स्तर पर इन्होंने चटनी संगीत को भव्य बनाने का प्रयास किया है।

घर परिवार में विभिन्न संस्कारों, उत्सवों पर गीतों से वातावरण को गुंजायमान करने का दायित्व भारतीय समाज में महिलाएँ ही करती आई हैं। विशेष रूप से स्त्रियों के लिए स्त्रियों द्वारा गाए जाने वाले गीतों की भी एक परंपरा पंजाब में विवाह से पूर्व आयोजित लेडीज़ संगीत में देखी जा सकती है। त्रिनिदाद में 'माटीकूर नाइट' का प्रचलन इसी परंपरा की अगली कड़ी है। विवाह से एक दिन पहले आयोजित 'माटीकूर नाइट' में बाहर से मिट्टी खोदकर लाने, उसे पूजास्थल पर प्रतिष्ठित करने के साथ-साथ झुकी हुई मुद्रा में नृत्य किया जाता है। बंद दरवाजों के पीछे, पुरुष समाज की नज़रों से दूर विवाहित महिलाओं द्वारा गाए जाने वाले इन गीतों में द्विअर्थी शब्दों और विशेष मुद्राओं द्वारा भावी दुल्हन को विवाहित जीवन के बारे में बताया जाता है। रिकी रामौतार के माटीकूर गीत के बोल हैं-

*हरदी की रात जो आए*
*देबो सतरंगिया विछाए*
*हो बाबा*
*देबो सतरंगिया विछाए*

*माटीकूर,*
*माटीकूर,*
*माटीकूर,*
*माटीकूर।*

मॉरीशस में दुल्हन के साथ दूल्हे के घर में भी विवाह से पूर्व 'गीत गवाई' के रूप में गीत और नृत्य का आयोजन होता है। जिनमें स्त्री पुरुष सब सम्मिलित होते हैं। कहीं-कहीं पुरुष स्त्रियों की वेषभूषा पहनकर स्त्रियों के हाव-भाव दिखाते हुए नाचते हैं जो बिहार में होने वाले 'लौंडा नाच' की याद दिलाते हैं। 'बियाह के गीतों' में राकेश यानकरन का 'जाने वाले दुलहिन' उल्लेखनीय है।

'कुली वुमन' की प्रतिष्ठित लेखिका गायत्री बहादुर ने अपनी दादी की भारत से गुयाना तक की यात्रा का वर्णन करते हुए चटनी संगीत के प्रति अपने आकर्षण का उल्लेख करते हुए लिखा है कि वे एक संभ्रांत परिवार से ताल्लुक रखती हैं। चटनी संगीत के प्रति उनके लगाव को उनकी माँ टेढ़ी निगाहों से देखती थी लेकिन न्यूयार्क, फ्लोरिडा, टोरंटो, लंदन में होने वाले विवाह उत्सवों में सभी अंकल आंटियों को चटनी संगीत की धुन पर एक साथ थिरकते हुए देखकर उन्हें महसूस होता था कि यह संगीत उनकी जड़ों से जुड़ा है।

इक्कीसवीं सदी के दूसरे दशक में भूमंडलीकरण और सूचना विस्फोट के वातारवरण में सांस लेते हुए पीछे मुड़कर देखें तो पाएँगे कि पिछली सदी के आरंभिक वर्षों में घर आंगन, खेतों और विवाह उत्सवों में गूंजने वाले चटनी संगीत ने विकास के अनेक सोपान पार कर लिए हैं। पीड़ित कुली की व्यथा, गोरे लोगों के प्रति घृणा, ईश स्तुति, विरह व्यथित हृदय की पीड़ा और दांपत्य जीवन के खट्टे-मीठे अनुभवों से आगे महिला सशक्तिकरण के स्वर भी अब इसमें सुनाई देने लगे हैं। घरेलू हिंसा, पति की नशे की लत से त्रस्त पत्नी अपनी स्थिति के विषय में सवाल करती हुई दिखाई देती है। अनिल सिंह रामेसुर का 'दाल पकायेली' और 'बिस्वानी दीपोय' का 'शादी करके' इसके प्रमाण हैं। उच्च जीवन मूल्यों के स्थान पर भौतिक सुखों की चाह को भी इन गीतों में निशाना बनाया गया है यथा 2012 में गुयाना, सूरिनाम और त्रिनिदाद में लोकप्रिय 'पैसा चटनी' उदाहरण है-

*दुनिया में सभी कोई*
*पैसा खोजतबा*
*कोई करे चोरी भाई*
*कोई मारे डंका*
*जहाँ चलिए सभ कोई तो*
*पैसा खोजतबा*
*कोई करे चोरी भाई.....*

नई पीढ़ी अफ्रीकी, पश्चिमी यूरोपीय या मिडिल ईस्ट की सीमाओं में बँधना नहीं चाहती। ढोलक ,हारमोनियम, तासा की सहज सीधी लय में ढले गीतों से आगे इलैक्ट्रिक गिटार, ड्रम की बोर्ड की धुनों पर बड़े-बड़े मंचों पर थिरकना चाहती है। फलतः चटनी के नए-नए रूप सामने आ रहे हैं जैसे 'रेगा चटनी' भांगड़ा 'चटनी सोका' 'सेगा चटनी' 'बॉलीवुड चटनी'। मिट्टी से उपजा संगीत अब हाइब्रिड हो गया है।

इस प्रकार चटनी संगीत का उदय और विकास हमारे युग की एक सांस्कृतिक घटना है जो बीसवीं सदी में घटित हुई। इसकी विशिष्टता यह है कि इसके बीज समाज के संभ्रांत वर्ग ने नहीं अपितु जन-साधारण अथवा आम आदमी ने बोए लेकिन इसके विस्फोटक विकास ने आम और खास सभी का मन मोह लिया है। डायस्पोरा देशों में बसे भारतवंशियों को चटनी के तार अपने पूर्वजों की जन्मभूमि से जोड़ते हैं। दूसरे शब्दों में, कहें तो चटनी संगीत के माध्यम से विश्व में भारतीय संस्कृति का प्रसार हो रहा है।

– सी-29, सी. सी. कॉलोनी, दिल्ली-110007

❑❑❑

# गिरिजाकुमार माथुर : चिंतन की एक स्वस्थ परंपरा

**सुरेश धींगड़ा**

गिरिजाकुमार माथुर के चिंतन और उनकी मान्यताओं पर बात करने के लिए हमें वर्ष 1935 से 1965 की कविता पर उनके मंतव्यों पर ध्यान देना होगा। उन्होंने अपने लेख 'अस्वीकृत का नमोन्वेष: तार सप्तक से अकविता तक' (नई कविता : सीमाएँ और संभावनाएँ) में लिखा है : "पुरानी मध्ययुगीन मूल्यदृष्टि, भावुकतापूर्ण रोमानी, कल्पनाप्रधान सांस्कृतिक बोध तथा धरातलीय उदारवाद (जिसे हिंदी में मानवतावाद अथवा तथाकथित भारतीय परंपरा की संज्ञा दी जाती है) के धुंध को इस नई संवेदनशीलता और वस्तुपरक सौंदर्य-दृष्टि ने सदा के लिए मिटा दिया है। सामाजिक दायित्व के इस महत की ओट में नकली मांगलिकता और निरीह शुभाशंसा का जो आडंबर रचा जा रहा था और अब भी तुरत-सिद्धियों के लिए रचा जाता है उस पाखंड की कलई भी नव काव्य की खरी तथा निष्ठापूर्ण क्रियाविधि पिघला कर बहा चुकी है।" (पृ. 1)

इस वक्तव्य के 'भारतीय परंपरा' और 'तुरत-सिद्धियों के लिए' वाक्यांशों पर ध्यान दें तो लगता है कि छायावाद के बाद काव्य में भले ही इन प्रवृत्तियों का लोप दिखाई दे रहा था, किंतु राजनैतिक जीवन में हम आज भी उनसे मुक्त नहीं हुए हैं क्योंकि कल्पना-प्रधान सांस्कृतिक बोध और कथित भारतीय परंपरा आज भी बलवान है, जिसके सूत्र प्रसाद-कालीन सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और 'इतिहास जैसा होना चाहिए था' जैसी अवधारणाओं या मिश्र, बनावटी और नियोजित पुनरुत्थानवादी प्रयासों में देखे जा सकते हैं। कहा जा सकता है कि यह धारणा एक तरह से एकांतिक संस्कृति की वाहक है, जिसके अंतर्गत बहुसंख्यक समुदाय अल्पसंख्यक समुदायों पर अपना वर्चस्व स्थापित करने का प्रयास करता है- कभी बहुसंख्या के नाम पर सीधे और कभी बहुसंख्यकों की भावना या विश्वास के नाम पर परोक्ष रूप से; कभी यह धार्मिक उदारता का नाम और बड़प्पन धारण कर लेता है, तो कभी परंपरा के नाम पर अन्य समुदायों की संस्कृतियों और परंपराओं को दबाकर सांस्कृतिक सरलीकरण करने का प्रयास करता है और इसके पीछे होता है धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक वर्चस्व प्राप्त करने का प्रयास।

कविता के विषय, दृष्टिकोण और समय के भाषा-रूपों के प्रयोग के वह हिमायती दिखाई पड़ते हैं। उनके छायावाद से प्रस्थान के बिंदुओं में एक महत्वपूर्ण संकेत भाषा के बदलते रूप हैं, जिन्हें उन्होंने विशेष रूप से रेखांकित तो किया है, वे उनकी अपनी कविताओं में भी सतत होने वाले बदलावों में दिखाई देते हैं।

इसका प्रमाण हमें उनकी 1941 में झांसी में लिखी कविता 'क्वाँर की सूनी दुपहरी' में प्रयुक्त 'गरमीले' जैसे शब्दों तथा 'छोर पर से', 'दीवार पर के' जैसे रूपों के प्रयोग में मिलता है और 1942 में दिल्ली आने के बाद जब वह 'मशीन का पुर्जा' जैसी कविता लिखते हैं, तो गाँव की याद छूटने के बावजूद, नए माहौल और उससे उत्पन्न अनुभवों को एक तरह की मिश्रित भाषा में व्यक्त करते हैं। यह दुनिया दफ़्तर की दुनिया है, जिसमें आदमी सुबह से शाम तक शहर की चकाचौंध से कटा-सा बिना उससे कोई सरोकार महसूस किए *खटता है:*

*गोधूलि हो गई धूल से ढकी फ़ाइलों के पत्रों पर/*
*कब्रों-सा सुनसान समाया/भूत बना उसका मन*

*बाहर घूम रहा है/*
*उन मोटे लानों के ऊपर/*
*अपनी रुग्णा पत्नी की सूनी आँखों में।*
.....
.....
*काग़ज़ की मोटी रूखी दीवार खड़ी है/*
*श्वेत प्रेमत की मूरत जैसी।*

('मुझे और अभी कहना है', पृ. 51-52)

यह एक दिलचस्प तथ्य है कि गिरिजाकुमार माथुर की भाषा बीसवीं शताब्दी के मध्य से पहले ही बदलने लगी थी। उसमें छायावाद की रहस्यमय शब्दावली, प्रयोगवाद के अतिरिक्त उलझाव, नव रोमानवादियों की नफ़ासत और प्रगतिशीलों की निश्चित-प्राय: शब्दावली नहीं है। इनके विपरीत उनकी कविताओं में संवेदनाओं की सीधी अभिव्यक्ति मिलती है, उनमें वे शब्द शमिल होने लगते हैं, जो पूर्व में गद्य के क्षेत्र के माने जाते रहे हैं। 'आग और फूल', 'प्रौढ़ रोमांस', 'सांयकाल', 'एशिया का जागरण' जैसी कविताएँ इसका प्रमाण प्रस्तुत करेंगी। लेकिन, यह बदलाव कविता के कवितापन या आंतरिक लय, जिसे स्वयं माथुर 'नाद' की संज्ञा देते हैं, की कीमत पर नहीं हुआ, वह तो भविष्य की कविता की भाषा का संकेत है। इन बदलावों को उनकी काव्य-यात्रा के पड़ावों के अनुरूप देखने की अपेक्षा है।

वस्तुत: गिरिजाकुमार माथुर ने हिंदी कविता की आंतरिक लय की जो व्याख्या 'नाद सिद्धांत' के अंतर्गत की है, वह न केवल अपने समय की नई अवधारणा के रूप में देखी जानी चाहिए वरन् उसे 'नए सौंदर्यशास्त्र' के रूप में भी देखा जाना चाहिए। यह आवश्यकता वास्तव में, इसलिए उत्पन्न हुई क्योंकि परंपरा से जुड़े आलोचकों ने नई कविता पर भी वही प्रतिमान लागू करने चाहे जो नाट्यशास्त्र में व्यक्त प्रतिमान/ मान्यताएँ संस्कृत और मध्ययुग के भक्ति और रीति साहित्य पर लागू किए जाते रहे थे। ज़ाहिरा तौर पर बदली परिस्थितियों में पुरानी काव्य-मान्यताओं के प्रति विद्रोह के रूप में निकली नई कविता को समझाने या उसकी पड़ताल करने के लिए वे निष्कर्ष पुराने पड़ चुके थे। छंद के टूटने के साथ जिस 'नए छंद' की उद्भावना को देखा जाना चाहिए था, उसके लिए नए सिद्धांतों/प्रतिमानों/दृष्टि की अनिवार्यता थी। इन्हीं को खोजने का काम किया था गिरिजाकुमार माथुर ने। विषय अवश्य नया और दुरूह था, संभवत: इसीलिए कालांतर में इस पर विशेष चर्चा नहीं हुई और 'नाद' को संगीत के प्ररिप्रेक्ष्य में ही देखा जाता रहा जबकि गिरिजाकुमार माथुर इसे 'शब्दों की मौलिक ध्वनियों के कलात्मक परिचय' के रूप में देखते हैं जिनके सार्थक प्रयोग से अनुभूति की वास्तविक अभिवृत्ति (मूड) संपूर्ण रूप से प्रकट हो सकती है। ध्वनि यहाँ अर्थ-व्यंजना का प्रतीक बनकर आती है, काव्य का बाह्य अलंकरण या अतिरंजन नहीं। वह 'वस्तु' के समस्त प्रभावों का व्यक्त संकेत बन जाती है। ('नाद सिद्धांत : ध्वनियों के मौलिक अर्थ', संकलित 'नई कविता : सीमाएँ और संभावनाएँ पृ. 23)

गिरिजाकुमार माथुर इसी आधार पर छायावादी काव्य में शब्द, चित्रभाव, बिंबभाव और काल्पनिक उद्भावनाओं की एक रीतिकालीन रूढ़ि स्थापित हुई देखते हैं। इसी आधार पर वे यह भी संकेत करते हैं कि उसमें अनेक रूढ़ प्रतीक प्रयोग किए गए, जो बाद में प्रगीत काव्य में भी इस्तेमाल किए गए। व्यंजन-प्रधान अनुप्रासों के आधार पर नाद-तत्व रीतिबद्ध और परिपाटी से जुड़े कवियों में वे अधिक देखते हैं। (वहीं, पृ 25) उनका मानना है कि 'स्वर ध्वनियों' के आधार पर रचा गया नाद-तत्व अधिक संश्लिष्ट एवं आंतरिक गतिमयता अर्थात् लयता उत्पन्न करता है।

गिरिजाकुमार माथुर इस अवधारणा के आधार पर स्पष्ट रूप से कहते हैं : "रीतिबद्धता द्वितीय श्रेणी के कवित्व को ही जन्म दे सकती है, श्रेष्ठ प्रतिभाएँ सदा ही ऐसी परिधियों का अतिक्रमण कर जाती हैं। रूढ़ि के अनुसरण से पुनरावृत्ति और चमत्कार-प्रियता उपजती है, जो ह्रास का निश्चित प्रमाण है।" (वही, पृ. 28) उनके अनुसार शुद्ध काव्य की प्रतिष्ठा पहली बार प्रयोगशील कविता के उदय के साथ ही हुई। यह भी हिंदी काव्य-क्षेत्र में पहली बार हुआ कि उसे संगीत के उपकरणों से अलग कर साहित्यिक निकष से जोड़ा गया। उन्होंने इस बात को भी रेखांकित किया है कि कविता नई कविता में पहुँचकर स्वर पाठ-शैली में बद्ध मनोरंजन का साधन न रह कर गंभीर साहित्य कला के रूप में ग्रहण की गई।

गिरिजाकुमार माथुर इस बात पर भी चिंता व्यक्त करते हैं कि नई कविता में तीव्र प्रतिक्रिया के कारण छंद से ही नहीं, लय से विच्छेद हो गया, लेकिन वे इस

ओर भी संकेत करते हैं कि यह परिवर्तन अपने चरम बिंदु पर पहुँचकर रुक गया। चूँकि वे छंद से मुक्ति का अर्थ लय से मुक्ति नहीं मानते, इसलिए कहते हैं: "कविता अर्थ के आंतरिक नाद अर्थात् लय से मुक्त होकर कविता नहीं रह जाती, वह गद्य भी नहीं रहती, अ-पद्य (नान-वर्स) हो जाती है।" (वही, पृ. 41) इसलिए उनकी दृष्टि में यह आवश्यक है कि "भाव-पक्ष, बिंब-पक्ष और नाद-पक्ष के पारंपरिक संबंध को स्पष्टता समझा जाए तथा यह स्वीकार किया जाए कि इनमें से कोई भी तत्व गौण नहीं है, सभी का समान महत्व एवं अनिवार्यता है।" (वही, पृ 42)

छायावाद से पूर्ण प्रस्थान की पृष्ठभूमि में वैश्विक स्तर पर प्रबल हुई आधुनिकता और उसकी प्रक्रिया की महत्वपूर्ण भूमिका है। साथ ही यूरोप में विकसित नई विचारधाराओं, यथार्थवाद और फ्रायडवाद- के उदय, सोवियत क्रांति और उसके फलस्वरूप अंतरराष्ट्रीय समाजवादी आंदोलनों का प्रारंभ, मानव-मुक्ति के प्रयास, राजनैतिक स्वतंत्रता के लिए आरंभ या तेज हुए आंदोलन आदि थे। इस संदर्भ में यह भी रेखांकित करना होगा कि छायावाद के साथ-साथ प्रेमचंद की धारा भी बह रही थी, जिसमें न तो छायावादी भाषा का प्रयोग था और न 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' जैसी धारणाओं का प्रश्रय प्राप्त था। इसके पीछे विश्व की अन्य भाषाओं में हो रहे साहित्यिक आंदोलन और यूरोपीय दार्शनिक अवधारणाएँ भी अपनी भूमिका निभा रही थीं। हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में होने वाले एक-के-बाद-एक साहित्यिक आंदोलनों ने भारतीय मानव को झकझोर दिया था। वास्तव में यह वैचारिक विकास की सतत प्रक्रिया है। प्रयोगवाद, प्रगतिवाद तथा आजादी के बाद नई कविता और फिर अकविता-जिसे गिरिजाकुमार माथुर 'अस्वीकृत कविता' कहते हैं बुभुक्षु पीढ़ी की कविता, ठोस कविता, विचार कविता जैसे अनेक आंदोलन उभरे। माथुर स्पष्ट तौर पर कहते हैं कि परिवर्तन के सूत्र यंत्र-सत्ता के प्रादुर्भाव और उत्तरोत्तर विकास के कारण पल्लवित हुए हैं। इसके पीछे की वास्तविकता यह है कि मनुष्य अपने संदर्भों से त्रस्त होता है और इस त्रास को समझने के लिए वह अभिव्यक्ति के नए-नए माध्यमों की उद्भावना करता है, जो शीघ्र ही पुराने और बासी हो जाते हैं। इसलिए वे स्थायी समाधान नहीं देते, पर आगे की दिशा का संकेत कर देते हैं। यह विचार कविता पर ही नहीं अन्य कलाओं पर भी लागू किया जा सकता है। यह एक दिलचस्प तथ्य है कि चित्रकला भी कविता तथा अन्य साहित्यिक विधाओं की भांति अनेक आंदोलनों और परिर्वतनों से गुजरी है और हमें क्यूबिज़म, अतियथार्थवाद, ब्लैक पेंटिंग्स जैसे आंदोलन देखने को मिले हैं। होता यह है कि जब कोई आस्था शेष नहीं रहती, तब लगता है कि "देवता नष्ट हो चुके हैं, चमत्कार और वरदान के प्रताप (आज) अर्थहीन हैं, परित्राण का कोई उपाय नहीं, आदर्श के माध्यम से पलायन के रास्ते लुप्त हो चुके और ईश्वर की मृत्यु हो गई है।...." (वही, पृ. 12) नीत्शे के इस दर्शन ने अन्य भारतीय भाषाओं की भाँति हिंदी के साहित्यकारों को भी प्रभावित किया। भारत में विशेष रूप से आजादी के बाद के दौर ने हमें अनास्था और अस्वीकार तक उस समय पहुँचा दिया, जब लगने लगा कि मुक्ति का कोई रास्ता शेष नहीं रहा, हमारे अस्तित्व की कुंजी दूसरों-किन्हीं अनाम शक्तियों के हाथों में पहुँच चुकी है। यह भी लगने लगा कि यांत्रिक विकास के समानांतर कोई वैज्ञानिक संस्कृति नहीं पनप पाई है। उसने केवल उपयोग और उपभोग की मानसिकता को जन्म दिया है। दूसरी ओर यांत्रिक विकास का लाभ विश्व के एक बहुत बड़े हिस्से को मिला ही नहीं। राजनैतिक स्तर पर या तो नए आयुधों के निर्माण पर बल था या राजनैतिक-आर्थिक-सांस्कृति वर्चस्व स्थापित करने पर।

गिरिजाकुमार माथुर वैचारिक विकास का कोई सीमांत नहीं मानते, वह किसी बिंदु विशेष से प्रारंभ होकर दूसरे बिंदु पर समाप्त नहीं हो जाता, वरन् उसमें एक सतत प्रक्रिया होती है जिसके किसी खंड-विशेष के मूल्यांकन के लिए समयांतराल की दरकार होती है। इसी विचारणा के अंतर्गत वे छायावादी युग को मध्ययुगीन वृत्ति और आधुनिक संवेदना के मध्य स्थित होने वाला एक संधिकाल मानते हैं। इसीलिए यह काल उनकी दृष्टि में 'प्राक् आधुनिक चरण' है। उनके विचार से "एक ओर उसमें अध्यात्मधर्मी दार्शनिकता थी जो मध्ययुगीन प्रेरक शक्ति अर्थात् धर्म का ही अवशेष थी। दूसरी ओर परंपरा से विद्रोह का रोमानी तत्व भी था, जिसे हम एक प्रारंभिक ढंग की आधुनिकता अथवा आधुनिकता का पूर्वाभास कह सकते हैं।" ('आधुनिकता की प्रक्रिया', 'नई कविता : सीमाएँ : और संभावनाएँ', पृ. 104)

इस आधार पर कहा जा सकता है कि छायावादी संवेदना में दो मूल तत्व मिश्रित होकर आए थे, अध्यात्मोन्मुख मध्ययुगीन प्रवृत्ति और आदर्शवादी विद्रोह का स्वर। गिरिजाकुमार माथुर अगले दौरों की कविता में यहीं से प्रमाण-बिंदु भी देखते हैं। चूँकि छायावाद का नयापन आधुनिकता नहीं थी, इसलिए नएपन में वे उन तत्वों की तलाश करने के हिमायती हैं, जो उसे आधुनिकता की श्रेणी में ला खड़ा करने में सक्षम हों : "आधुनिकता परिवर्तित भावबोध की वह स्थिति है जिसका प्रादुर्भाव यांत्रिक तथा वैज्ञानिक विकास-क्रम के वर्तमान बिंदु पर आकर हुआ है।" (वही, पृ. 105) और यह बिंदु हैं द्वितीय महायुद्ध, जिसने मानवीय परिवेश में एक तात्विक संक्रमण पैदा कर दिया था, जिसने विज्ञान और प्रविधि का अतिशय विध्वंसक रूप प्रस्तुत किया, जिसमें साम्राज्यवादी राष्ट्रवाद और जाति श्रेष्ठता तो पराजित हुई, लेकिन जिसने जल्द ही एक व्यापारिक साम्राज्यवाद के उदय की परिस्थिति भी निर्मित कर दी जिसके समानांतर हमें सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के पुनरुत्थान के प्रयास दिखाई दे रहे हैं।

गिरिजाकुमार माथुर आधुनिकता के तीन स्वर मानते हैं : परिवेशीय स्तर; भाव क्षेत्र से संबद्ध; और दार्शनिक पक्ष। हमें यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि उनके समय तक उत्तर आधुनिकता और उत्तरोत्तर आधुनिकता जैसी अवधारणाओं की चर्चा भारतीय परिदृश्य में नहीं थी, लेकिन यह स्पष्ट हो चुका था कि प्रकृति और उसके जी कोषों में आणविक प्रभावों से विघटन और विकृति की समस्या उपस्थित है तथा मनुष्य का मनुष्य रहना भी खतरे में पड़ चुका है। हमारे पूर्वजों के आदर्श सिद्धांत भी मात्र जुमले रह गए थे, मानव सभ्यता भले ही औद्योगिक विकास के कारण ऊँचाइयाँ प्राप्त कर चुकी थी। लेकिन, औद्योगिक विकास की लहर अभी कुछ दूर थी, जिसे हम आज महसूस कर रहे हैं।

इन स्थितियों ने साहित्य में बौद्धिकता पैदा की, गिरिजाकुमार माथुर का मानना है कि "बौद्धिकता निर्लिप्ति नहीं होती और न रचनात्मक प्रक्रिया में अनुभूति को बौद्धिक स्तर पर ग्रहण करने मात्र से वह स्वतः ही उत्पन्न हो जाती है, जो रचनाकार को तब प्राप्त होती है, जिस समय वह अपने 'भोक्ता' को 'दर्शक' बनकर देखने का स्तर प्राप्त कर लेता है।" (वही, पृ. 112)

माथुर ने इस तथ्य को रेखांकित करते हुए इसे पिछले दौर के काव्य से मुक्ति के रूप में ग्रहण किया है। वस्तुतः यही वह दौर था जब कविता में परिवार, विवाह, दांपत्य आदि सामाजिक संस्थाओं के प्रति 'बहिष्कार' और 'अस्वीकार' का भाव पनपने लगा था। लेकिन उसे अगले दौर की कविता में स्वर प्राप्त हुआ। माथुर इस कविता में वास्तविकता की उपस्थिति को स्वीकार तो करते हैं, लेकिन स्वयं उनकी कविता निषेधों के घेरे से बाहर रहती है। (इन्हीं स्थितियों में अकविता, अकहानी आज़ादी के दौर के बाद जनवादी कविता जैसे आंदोलन को भी जन्म दिया। हाँ, इस आंदोलन की पृष्ठभूमि में एक पुख्ता राजनैतिक विचारधारा की भूमि से इनकार नहीं किया जा सकता।) गिरिजाकुमार माथुर का मानना है कि इन आंदोलनों के संकेत हमें नई कविता से ही मिलने आरंभ हो जाते हैं। उन्होंने इस बात पर भी बल दिया है कि "विज्ञान युगीन लौकिक, लॉजिकल, अनासक्त दृष्टि से उसे देखना होगा, अर्थात् कवि को पुनः अपने संदर्भ में प्राकृत रूप से आना होगा।" (वही, पृ. 15) इसी संदर्भ में माथुर 'शीघ्र ही' अस्वीकृत कविता में 'आवर्तन' देखते हैं। इसे एक प्रकार से छायावादी, प्रयोगवादी, नई कविता, रोमानी और नव-रोमानी कविता-धारा के विरुद्ध अकविता की भूमिका के रूप में देखा जा सकता है।

परंतु इसका अर्थ यह नहीं लिया जा सकता कि माथुर अकविता के दौर की 'नंगई, भदेस, चौंकाने वाली प्रवृत्ति' का समर्थन कर रहे हैं। इसके विपरीत वह इसका स्पष्ट विरोध करते दिखाई देते हैं, लेकिन, साथ ही इन्हें स्थायी नहीं प्रारंभिक स्थिति मानते हैं। उनका यह मंतव्य उन कांफोर्मिस्ट आलोचकों की मान्यता के विरुद्ध बैठता है जिन्होंने अकविता की इन प्रवृत्तियों को प्रमुख मानकर इस आंदोलन और इसके प्रभाव में लिखी गई कविता (और कहानी को भी) सिरे से ही खारिज कर दिया। गिरिजाकुमार माथुर ने तो "अस्वीकृत दिशा की रचनाओं को एक ओर विकृति तथा दूसरी ओर घृणित अश्लीलता से नितांत अलग" (वही, पृ. 16) रखने की हिमायत की है। लेकिन, साथ ही उन्होंने इस बात पर भी बल दिया है कि "वस्तु-सत्ता की तीक्ष्ण, प्रत्यक्ष अनुभूति 'घटिया' नहीं होती, बल्कि वह

दृष्टिकोण जर्जर और घटिया होता है जो दायित्वहीन 'दर्द' के कंकाल को उठाए फिरता है, जो अंत:तत्वों के नवछायावादी दावे करता है और जो यथार्थ वर्तमान के विज्ञान-युग में 'धूप की गोरैयों' और बाल-सुलभ गुड्डे-गुड़ियों की बचकानी मानवीयता का खोखला स्वांग भरता ही जाता है, और वह दृष्टिकोण भी तत्वहीन है जो अपने संदर्भों को नहीं पहचानता तथा अपने परिवेश से कटे रहकर 'काफ्का' और 'कामू' की अनुकरणजन्य रचनाएँ नवीनता के नाम पर करता है।" (वही, पृ. 16)

इस लंबे उद्धरण को उद्धृत करने का उद्देश्य गिरिजाकुमार माथुर के वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा भारतीय परिदृश्य की पड़ताल करना भी है। सच तो यह है कि हिंदी कविता में सिद्धांत के स्तर पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण की बात सबसे पहले गिरिजाकुमार माथुर ने ही उठाई थी। जब यह स्वीकार किया जाने लगा कि कविता का उद्देश्य आदमी का अपने यथार्थ और ऐतिहासिक नियति से साक्षात्कार, प्रकृति, परिवेश, सामाजिक अवस्था तथा अंतरंग भावना के बीच नया अर्थपूर्ण सामंजस्य स्थापित करना भी है, तो गिरिजाकुमार माथुर ने बदले हुए परिप्रेक्ष्य में उभरे नए प्रश्नों और प्रतिमानों को लक्षित करते हुए आधुनिक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण की बात सामने रखी। इससे एक और संकेत भी मिलता है कि गिरिजाकुमार माथुर अपने दौर की कविता में आधुनिकता और वैज्ञानिकता के आधार पर एक नए कविता-संस्कार की आवश्यकता पर बल दे रहे हैं। इस नए दृष्टिकोण को उनकी अपनी कविता के संदर्भ में भी रेखांकित किया जा सकता है। उनकी 1941 में रचित कविता 'एशिया का जागरण' पर नजर डालें तो पहली नजर में लगता है कि यह राष्ट्रीय धारा की कविता है क्योंकि यह भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन से सीधे जुड़ी हुई है। लेकिन, इस कविता की खूबी यह है कि यह शीघ्र ही संकीर्ण दैशिक सीमाओं और परंपरागत राष्ट्रवादी मानसिकता का अतिक्रमण करके अंतरराष्ट्रीय स्थितियों की ओर संकेत करते हुए पूरे महाद्वीप और प्रकारांतर से विश्व के अनेक देशों में चल रहे मुक्ति संघर्षों से जुड़ जाती हैं और उसे एक विशाल फ़लक प्राप्त हो जाता है। कविता ने अन्य देशों की आंतरिक व्यवस्थाओं, राजनैतिक परिस्थितियों, सभ्यता के स्तरों और संस्कृतियों को भले ही विस्तार से न छुआ हो, लेकिन उसने उन असीम आकांक्षाओं, यूरोप की साम्राज्यवादी ताकतों के विरोध में स्वर उठा कर तथा युद्ध-विरोधी और शांतकामी दर्शन को हमारे सामने अवश्य रखा है। हमें यह याद रखना चाहिए कि इस कविता की रचना के बाद भारत, चीन, सीलोन (श्रीलंका), बर्मा (म्यांमार), हिंद-चीन आदि देशों ने एक-के-बाद-एक स्वतंत्रता हासिल की थी। माथुर ने एशियाई देशों की सभ्यताओं और संस्कृतियों की ऐतिहासिक गरिमा की ओर संकेत करते हुए भी उस गौरव-गाथा को अपने समय पर हावी नहीं होने दिया वरन् उसके माध्यम से एक आधुनिक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। इसलिए इस कविता को न तो पुरागामी कहा जा सकता है और न इसे राष्ट्रीय कविता-धारा की उद्बोधन कविताओं की श्रेणी में रखा जा सकता है। ऐसी कविताओं के लिए शायद 'मुक्ति-कविता' जैसी किसी संज्ञा की तलाश करनी होगी।

गिरिजाकुमार माथुर के काव्य में इतिहास-बोध और वैज्ञानिक दृष्टिकोण की विस्तार से चर्चा अनिवार्य बिंदुओं के रूप में देखी जानी चाहिए। 'तार-सप्तक' के बाद हिंदी में हुए काव्य-आंदोलनों का हिस्सा भले ही उन्हें न माना जाए, लेकिन उनकी कविताएँ उन दौरों की बानगी अवश्य प्रस्तुत करती हैं। एक दौर में तो इतिहास को आधार बनाकर अनेक कविताओं की रचना हुई थी। स्वयं माथुर ने कई लंबी कविताएँ लिखी, जो उनके इतिहास-बोध की सकारात्मक तस्वीर प्रस्तुत करती हैं। 'एक अधनंगा आदमी', 'आने वाले आंदलीबों के लिए', इतिहास की ज़र्राहों से' ऐसी कविताएँ है, जो इतिहास को "एक नि:संग वास्तविकता से देखने की कोशिश है, लेकिन साथ ही इसमें सातवें दशक की तमाम विसंगतियाँ (यदि परिर्वतनों को यह संज्ञा दी जा सके) और विडंबनाओं की दुनिया मौजूद है यानी ये कविताएँ एक तरह से वर्तमान पर कवि-दृष्टि का जायज़ा देती हैं।"

– 99, कादंबरी, सेक्टर 9, रोहिणी, दिल्ली-110085

❑❑❑

# हिंदी के काव्य विकास में जुड़ा हाइकु– एक नया आयाम

**डॉ. इंद्रदेव भोला इंद्रनाथ**

हिंदी आज विश्व की प्रमुख भाषाओं में अपना स्थान बना चुकी है। विश्व में बोली जाने वाली भाषाओं में प्रथम व द्वितीय स्थान पर गिनी जाती है और साहित्यिक दृष्टि से भी हिंदी को विश्व साहित्य में उच्चस्तरीय गौरवशाली स्थान प्राप्त है। साहित्यिक विधाओं जैसे कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, इतिहास के उच्च स्तरीय लेखन में प्रर्याप्त साहित्य उपलब्ध है। हिंदी भाषा, साहित्य व साहित्यिक विधाओं में बहुत शोधपरक कार्य हुए हैं और होते जा रहे हैं। इस दिशा में हमें गर्व है कि मात्र हिंदी भाषी लोग ही नहीं, गैर हिंदी भाषी लोग भी हिंदी को दिल से लगाए हुए हैं, वे हिंदी के विकास में अदम्य साहस दिखा रहे हैं और उल्लेखनीय सृजनात्मक लेखन कार्य कर रहे हैं। सचमुच एक भाषा सिर्फ एक जाति तक सीमित नहीं रहती हैं, वह सार्वभौम भाषा हो जाती है।

प्रश्न उठता है कि क्या भारतीय साहित्यकार अंग्रेजी साहित्य से प्रभावित होकर साहित्य सृजन के लिए प्रेरित नहीं हुए? क्यों नहीं, शेक्सपीयर, मिल्टन, बर्नार्डशॉ आदि साहित्यकार उनकी प्रेरणा के स्रोत रहे। यह भी उल्लेखनीय है कि हिंदी साहित्य व लेखन का अनुकरण अन्य भाषियों की अनेक साहित्यिक विधाओं का गैर भाषाओं में अनुवाद हुआ और प्रेमचंद, पंत, दिनकर, महादेवी वर्मा, हरिवंशराय बच्चन आदि की रचनाओं को न सिर्फ सराहा गया बल्कि उनसे प्रेरणा पाकर रचनाएँ करने में वे सक्षम हुए। साहित्यिक रचनाओं में विचारों के आदान-प्रदान से लाभ हुआ है।

आज इस बहुआयामी सृजनात्मक साहित्यिक विकास में कई नई विधाएँ जोड़ी जा रही हैं। वर्तमान युग के वैज्ञानिक व टेक्नोलोजी के दौर में तकनीकी रचनाएँ साहित्य में नया क्षितिज प्रदर्शित कर रही हैं। पत्रकारिता, जनसंचार, रेडियो, टी.वी. भी एक प्रकार से साहित्य के विकास में अहम् भूमिका निभा रहे हैं। ऐसे ही हिंदी साहित्य के बहुआयामी विकास में 'हाइकु' आ जुड़ा है।

पहले यह जान लेना आवश्यक है कि आखिर हाइकु है क्या? हाइकु मूलतः जापानी कविता का एक काव्य रूप है या कहेंगे कि हाइकु जापानी काव्य लेखन की एक शैली है। वह एक मुक्तक काव्य प्रकार है। इस काव्य की तीन काव्य शैलियाँ हैं। तोका, सेदोका और चोका। तोका में 5 पंक्तियाँ होती हैं और अक्षरों की संख्या कम से कम 5, 7, 5, 7, 7 होती हैं। सेदोका में 6 पंक्तियाँ होती हैं और पंक्तियों में अक्षर-क्रम 5, 7, 7, 5, 7, 7, होता है। चौका अर्थात् लंबी कविता। इसमें पंक्तियों की संख्या निश्चित नहीं होती। पंक्तियों में अक्षरक्रम 5, 7, 5, 7 का होता है। जापानी में 'हाइकु' शिल्प 5, 7, 5 अक्षरों के क्रमवाली, 17 अक्षरी अतुकांत त्रिपदी रचना अधिक प्रचलित है। इसे स्वासी काव्य भी कहा गया है।

प्रारंभिक रेंगा काल में 5, 7, 5 अक्षरों में त्रिपदी रचनाएँ की गईं और उसे 'हाइकाई' की संज्ञा मिली। धीरे-धीरे होक्कू और हाइकाई रेंगा के बंधन से मुक्त होकर 'हाइकु' की संज्ञा के साथ एक स्वतंत्र काव्य-शैली

में प्रचलित हो गया। वस्तुत: जापानी कविता एक महत्वपूर्ण विधा के रूप में उभर कर आई।

हाइकु रचना कोई नवीन विधा नहीं है। यह बहुत पुरानी रचना है। इसका प्रादुर्भाव सोलहवीं सदी में हुआ था। मूल रचनाकार जापानी कवि थे। जापान के ये चार प्रमुख हाइकुकार हुए हैं- 1. मतसुस बाशो 2. योसा बूशन 3. कोबेयासी इस्सा और 4. शिकि। ये हाइकु के स्तंभ माने जाते हैं। बाशो विख्यात संत थे। उनके द्‌वारा सन् 1644 से 1694 के समय में हाइकु रचना की शुरुआत हुई। अपने देश के भ्रमण के दौरान उन्होंने हाइकु लिखे और जनता में इसके माध्यम से संपर्क रखा। योसा बूशन सन् 1716-1789 के समय में हाइकु परंपरा को आगे बढ़ाने वाले दूसरे सुयोग्य कवि हुए। कोबेयासी इस्सा (1762-1826) में तीसरे कवि हुए जिनका व्यक्तिगत जीवन बहुत कष्टमय रहा और अनेक तनावों के बीच इन्होंने हाइकु लिखे। और चौथे हाइकुकार शिकि हुए।

जापान के कवियों की यह संवेदनशील काव्य विधा सहृदय पाठकों के मन-मस्तिष्क को छू गई। विषय की दृष्टि से जापानी परंपरा के अनुसार- ऋतु, आकाश, धरती, देवता, जीवन दर्शन, मनुष्य, पेड़, पक्षी, वनस्पति आदि। जब आकाश विषय कहते हैं तो इसमें चंद्र, सूर्य, हिम, मेघ, वर्षा, कोहरा आदि हैं और जब धरती विषय कहते हैं तो इसमें पर्वत, नदी, सागर, खेत, वृक्ष, प्रकृति आदि हैं। ऋतु का हाइकु के साथ गहरा संबंध है। जापान में हाइकु में ऋतु संकेत का एक कारण यह भी था कि हाइकुकारों से यह अपेक्षा की जाती थी कि जिस ऋतु में हाइकु लिखें, उसका संकेत ऋतु में करें।

जापान में हाइकु इतना लोकप्रिय हुआ कि वहाँ 50 मासिक हाइकु पत्रिकाएँ निकलने लगीं। हाइकुकार लोग मिलते और हाइकु कविता प्रतियोगिताओं में अपने-अपने हाइकु सुनाते और आनंद लेते। हाइकु कविता जीवंत हो गई।

**इंग्लैंड और भारत में हाइकु**

हाइकु जापानी भाषा में लिखा जाता था। जब उसकी लोकप्रियता बढ़ी तो अंग्रेजी व अन्य भाषाओं में अनुवाद होने लगा और मौलिक रचनाएँ भी होने लगीं। हाइकु रचना कई देशों में होने लगी और लोकप्रियता हासिल की। लंदन में 'विश्व हाइकु' क्लब स्थापित हुआ और वर्षों से चल रहा है और 'विश्व हाइकु उत्सव' आयोजित होता रहा जिसमें देश-विदेश के हाइकुकार भाग लेने आते और अपने स्वरचित हाइकु सुनाकर श्रोताओं को मुग्ध कर देते और प्रसिद्‌धि पाते। हाइकु में मात्र कविता ही नहीं गीत भी लिखे जाते हैं और क्लब में गाकर मज़ा लेने की परिपाटी सी बन गई है।

हाइकु रचना भारत में भी होने लगी और हिंदी में भी स्तरीय हाइकु लिखे जाने लगे। जापानी 'हाइकु' शिल्प के 5, 7, 5 अक्षरों के क्रमावली 17 अक्षरों का अक्षरीय अतुकांत त्रिपदी रचना को ही हिंदी के हाइकुकारों ने स्वीकारा है। उसकी मूल प्रेरणा आध्यात्मिक रही है। यह जीवन और प्रकृति, लक्षणा और व्यंजना के कथ्य को प्रकट करता है। उसमें आदर्श और रूमानी भावनाएँ भी मिलती हैं। हाइकु लेखन के संबंध में पीछे हमने संकेत कर दिया है कि 5, 7, 5 अक्षरों के क्रम में त्रिपदी काव्य रचना करनी पड़ती है अर्थात् पहली पंक्ति में 5 अक्षर, दूसरी पंक्ति में 7 अक्षर और तीसरी पंक्ति में 5 अक्षर होते हैं। कुल = 17 अक्षर होते हैं। याद रहे कि हाइकु में आधे अक्षरों और मात्राओं की गिनती नहीं होती।

उदाहरण-

| | |
|---|---|
| ओढ़े कफन | = 5 अक्षर |
| आतंक हो दफन | = 7 अक्षर |
| सदा सर्वदा | = 5 अक्षर |
| कुल | = 17 अक्षर |
| झूठ का सिक्का | = 5 अक्षर |
| सच्चाई की मंडी में | = 7 अक्षर |
| अस्तित्व फीका | = 17 अक्षर |

हाइकु चंद शब्दों में बड़ी-बड़ी, गुह्य या गूढ़ बातें कह देने की क्षमता रखता है। देखने में हाइकु छोटा होता है पर उसका लिखना उतना आसान नहीं। 17 अक्षरों को 5, 7, 5 के क्रम में लिखना, उसके उपयुक्त शब्द चयन, भाव निहित करना सचमुच जटिल होता है। शब्दों की पकड़ और भाव को समाहित करने में क्षमता न होने से हाइकु लघुतम रचना होने पर भी नहीं लिखा जा

सकता। अनावश्यक व अनुपयुक्त शब्दों का प्रयोग हाइकु के लिए सर्वथा वर्जित है। हाइकु रचना में अपवाद को भी स्वीकारा गया है अर्थात् कभी काव्य की मजबूरी हो तो फ्रेम से चिपके न रहकर एक दो अक्षर अधिक व कम प्रयोग कर सकते हैं।

भारत में हिंदी में हाइकु लिखने का प्रचलन हुआ। सन् 1982 के आसपास भारत में हाइकु क्लब की स्थापना हुई और उसके द्वारा हाइकु पत्र- 'शब्दाणु' शीर्षक से उसके प्रकाशन का श्री गणेश हुआ। हाइकु लेखन के क्षेत्र में कई हिंदी हाइकुकारों का पदार्पण हुआ और अब तो भारतीय हिंदी साहित्य के विकास में एक दमदार विधा हाइकु जुड़ गया है। भारत में कई हाइकुकार हैं जो सशक्त हाइकु लिखने में सक्षम हैं और उनकी हाइकु पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं।

हाइकु यद्यपि सोलहवीं सदी से लिखा जा रहा है पर हिंदी की कविता लेखन की शैली से कुछ भिन्न होने से और उसका उद्भव जापान में होने से उसका प्रचलन अभी तक कई देशों में नहीं हुआ है। खुद मॉरीशस में ही हाइकु का प्रचलन नहीं हुआ है। पर अचरज की बात तो यह है कि मॉरीशस के कवि डॉ. इंद्रदेव भोला इंद्रनाथ ने विश्व का पहला हाइकु महाकाव्य 'गागर में सागर' शीर्षक से प्रकाशित किया है जिसमें इनके लिखे 2,244 हाइकु छपे हैं। यह कैसे संभव हुआ? इंद्रनाथ जी ने पुस्तक के प्राक्कथन में लिखा है-

कई देशों में अभी हाइकु पहुँचा नहीं है। खुद मॉरीशस के कई पाठक पूछते हैं- हाइकु क्या है? मॉरीशस में हाइकु का प्रचलन अभी नहीं हुआ है। खुद मैं ही हाइकु लेखन से परिचित नहीं था। मैंने भारत की दो-तीन पत्रिकाओं में प्रकाशित हाइकु कविताएँ पढ़ी थीं। अति लघु रचना होने से मेरे दिमाग में हाइकु लिखने का विचार उत्पन्न हुआ और प्रयास करके कुछ हाइकु लिखे। वस्तुतः हाइकु लेखन के प्रतिमान, विधि विधान से मैं अनभिज्ञ था। जो हाइकु मैंने लिखे थे हाइकु लेखन शिल्प के अनुरूप नहीं थे। मैंने भारत के एक हाइकुकार से हाइकु की शिल्प शैली की जानकारी प्राप्त करने की सहायता मांगी। उनकी सहायता से मैं हाइकु लेखन शिल्प से अवगत हुआ और इतने ढेर सारे हाइकु लिख डाले।

मेरे हाइकु महाकाव्य 'गागर में सागर' की भूमिका में डॉ. हेमराज सुंदर, अध्यक्ष प्रकाशन विभाग, महात्मा गांधी संस्थान, मॉरीशस ने लिखा है- "मॉरीशस में इस समय हाइकु कविता का प्रचलन नहीं है और न ही यहाँ के अधिकांश कवि इसके लेखन शिल्प से अवगत हैं। हर्ष की बात है कि इंद्रदेव भोला इंद्रनाथ मॉरीशस के हिंदी साहित्य में हाइकु जैसी नवीन विधा को एक नया आयाम देते हुए सक्रियता से इसे जोड़ रहे हैं। 2,244 हाइकुओं की रचना करके उसे हाइकु महाकाव्य के रूप में छापना अपने आप में कीर्तिमान है। मैं मानता हूँ कि इंद्रदेव भोला जी की यह पहल मॉरीशस के हिंदी साहित्य के गौरव की परिचायिका है जो आने वाले हाइकुकारों का मार्गदर्शन करेगी।"

हॉलेंड में बसी सुप्रसिद्ध कवयित्री प्रो. (डॉ.) पुष्पिता अवस्थी ने लिखा है- "मॉरीशस के श्री इंद्रदेव भोला इंद्रनाथ जी हिंदू मनीषा और हिंदी प्रज्ञा का जीता-जागता प्रतीक हैं। हिंदी भाषा और साहित्य के लिए समर्पित इंद्रदेव जी गद्य और पद्य दोनों में समाधिकार से स्तरीय रचनाएँ करने वाले मॉरीशस के सशक्त साहित्यकार हैं। ऐसे कर्मठ साहित्य और हिंदी भाषा के साधक इंद्रदेव भोला इंद्रनाथ के द्वारा हाइकु लिखे गए हैं जिनमें संवेदना और विचार की सघन अभिव्यक्ति है जिसका कारण हाइकु के मान्यताप्राप्त सांचे से भी उनकी कथनी आगे निकल गई है। इंद्रदेव जी ने 2,244 हाइकुओं के बृहद रूप की महाकाव्य में सर्जना कर विश्व हाइकु काव्य साहित्य में कीर्तिमान स्थापित किया है।"

विश्व विख्यात लेखक और समीक्षक डॉ. कमल किशोर गोयनका इंद्रनाथ कृत हाइकु महाकाव्य की प्रति पाकर दंग रह गए कि मॉरीशस के कवि ने इतने उत्कृष्ट हाइकु महाकाव्य का प्रणयन किया है और इतने सारे 2,244 हाइकु! उन्होंने इंद्रदेव भोला इंद्रनाथ की साहित्य साधना की भूरि-भूरि प्रशंसा की और लिखा है कि यह महाकाव्य भारत के साहित्यकारों के पास पहुँचना चाहिए ताकि विदेशों में हिंदी के बहुआयामी सृजनात्मक लेखन तथा लेखन प्रक्रिया से वे अवगत हो सकें।

-सियोन फील्ड रोड, रेवरि ड्यू रेंपर्ट, मॉरीशस

❑❑❑

# राष्ट्रीय आंदोलन और हिंदी पत्रकारिता

डॉ. एम. शेषन्

ब्रिटिश शासक जब अपनी सत्ता को भारत में सुस्थिर करने के प्रयोग में लगे रहे, लगभग उसी समय भारत में छापेखाने का आगमन हुआ और अखबारों का प्रकाशन शुरू हुआ। ईस्टइंडिया कंपनी ने अपनी पकड़ मजबूत करने के उद्देश्य से प्रेस के आगमन का स्वागत किया। प्रेस में उन दिनों जिस तरह की खबरें छपती थीं, उनको रोकने के लिए कंपनी को सेंसरशिप का सहारा लेना पड़ा। इस तरह सत्ता और प्रेस के बीच टकराव शुरू हुआ।

बंगाल भारतीय पत्रकारिता की ही नहीं, हिंदी पत्रकारिता की भी जन्मभूमि और उदग्र साधना-स्थली रहा है। स्वदेशी पत्रकारिता के आदि पुरुष, राजा राममोहन राय ने भारतीय पत्रकारिता के जगत में उसी समय पर्दापण किया। राय साहब ने शुरुआत भारतीय संत महात्माओं की तरह धर्म और समाज सुधारक के रूप में की। अपने आंदोलन को आगे बढ़ाने के लिए उन्होंने अंग्रेजी बांग्ला और फारसी में पत्रों का प्रकाशन शुरू किया। अपने पत्रों के माध्यम से सामान्य जनता तक पहुँचने का प्रयत्न करते थे। वे प्रेस की आजादी का यह मतलब लगाते थे कि यह सच्चाई को खोजने की आजादी है। राय साहब ने अपने समाज सुधार आंदोलन को आगे बढ़ाने के लिए प्रेस की आजादी पर जो जोर दिया उसका उद्देश्य मसीही धर्म की बाढ़ से हिंदू धर्म को डूबने से बचाना था। इसमें वे सफल हुए।

हालाँकि 1957 की क्रांति के पहले और उसके बाद भी भारतीयों ने समाचार पत्रों का प्रकाशन आरंभ कर दिया था, पर उनकी अपील मुख्य रूप से समाज सुधार थी। धीरे-धीरे समाचार पत्रों ने जुझारूपन का परिचय देना शुरू किया। यही वह समय था जब हिंदी प्रदेश में भारतेंदु हरिश्चंद्र ने "निजभाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल" का नारा बुलंद किया था। उन्नीसवीं शती के इस भाग में महादेव गोविंद रानाडे, गोपाल कृष्ण गोखले, काशीनाथत्र्यंबक तैलंगे, बालगंगाधर तिलक आदि महापुरुष भारत के सामाजिक, राजनैतिक मंच पर आए। वे समाज सुधार के साथ राजनीति की बात करते थे।

इन नेताओं से प्रेरणा लेकर अरविंद घोष ने 'वंदेमातरम्' के संपादन के रूप में 'सविनय अवज्ञा' के दर्शन का प्रतिपादन किया। गांधी जी के करीब 20 वर्ष पूर्व अहिंसात्मक 'सविनय अवज्ञा' के दर्शन को अरविंद घोष ने प्रतिपादित किया था। इसी भाँति तिलक ने 'केसरी' पत्रिका के माध्यम से जनजागरण उत्पन्न करने का महत् प्रयास किया था। जब तिलक, अरविंद आदि देश के दक्षिण पश्चिमी और पूर्वी भाग में स्वतंत्रता की जोत जगा रहे थे तब स्वामी दयानंद सरस्वती देश के उत्तर और पश्चिम क्षेत्र में सक्रिय थे।

भारत में पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से जनता को जगाने और उसे आजादी के लिए संघर्ष करने के लिए जिस तरह तैयार किया वह एक महत्वपूर्ण अभियान था। देश के रियासती नरेश भी इस प्रभाव से अछूते नहीं रहे। जोधपुर प्रजामंडल के नेता जयनारायण व्यास पर राजद्रोह के कई आरोप लगाए गए और उन्हें भारी कठिनाइयों से

गुजरना पड़ रहा था। इस प्रकार भारत के राजा और रंक की सोच में यह बदलाव आकस्मिक नहीं था। भारतीय जीवन को दिशा प्रदान करने वाले लेखकों, विचारकों और पत्रकारों ने इसे एक ज्वाला का रूप दिया।

प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के करीब 10 वर्ष बाद भारतेंदु हरिश्चंद्र ने 'कवि वचन सुधा' का प्रकाशन आरंभ किया। उनके सहयोगी बालकृष्ण भट्ट ने 1877 में प्रयाग से 'हिंदी प्रदीप' का प्रकाशन आरंभ किया। बालकृष्ण भट्ट को हिंदी में राजनैतिक पत्रकारिता का जनक कहा जाता है। 'हिंदी प्रदीप' का उद्देश्य भी राष्ट्र की सोई पड़ी सांस्कृतिक, राजनैतिक चेतना को जगाना था। उनके सौ से अधिक लेख आज भी पाठक को तिलमिला देते हैं।

साम्राज्यवादी तोप के प्रतिपक्ष में क्रियाशील और कालजयी भारतीय पत्रकारिता ने अपने समय की चुनौती का पूरी शक्तिमत्ता से मुकाबला किया था। उन्होंने अपने चरित्र बल और पुष्ट मनोबल से अंग्रेजी राज के कुकृत्य और नृशंसता का प्रतिरोध किया था। साम्राज्यशाही अभिशाप से मुक्ति हेतु उस युग के पत्रकार बड़ी से बड़ी यातना झेलने को प्रस्तुत रहते थे। बड़े से बड़े प्रलोभन उन्हें आदर्शच्युत करने में विफल रहे। अपने निजी स्वार्थ को ताकपर रखकर अपनी प्रतिभाशक्ति और जीवनचर्या को देशमुक्ति संग्राम में नियोजित कर दिया था। उनकी भूमिका लोकनायक की भूमिका थी। उस युग की पत्रकारिता इसी भूमिका से समृद्ध थी। बाबूराव विष्णु पराड़कर, गणेश शंकर विद्यार्थी, शिवपूजन सहाय जैसे प्रबुद्ध पत्रकारों ने पत्रकार कुल की धवलता का बार-बार तीव्र आग्रह प्रकट किया था। उस युग के पुराने पत्रकारों ने अपने विवेक, समृदध व्यक्तित्व और चारित्रिक मनोबल से उस युग की राजनीति का दिशानिर्देश किया था। विदेशी राजसत्ता के प्रतिपक्षी की भूमिका में वे अग्रणी थे। साम्राज्यवादी नृशंसता का जिस दृढ़ता और युयुत्सु मुद्रा में मुकाबला करते थे, उसी जागरूकता के आग्रह से स्वदेशी राजनेताओं की च्युति पर टिप्पणी करते उन्हें संकोच नहीं होता था। महात्मा गांधी जैसे लोकनायक पर बाबूराव विष्णु पराड़कर ने कड़ी टिप्पणी की थी।

हिंदी भाषी समाज की सक्रिय हित-चिंता ही हिंदी पत्रकारिता की आदि प्रतिज्ञा रही। उस युग के पत्रकार आजादी की लडाई में अपने विद्या कौशल, चरित्र बल से देश के दुर्भाग्य मोचन के निमित्त बड़ी से बड़ी चुनौती और कड़ी से कड़ी यातना का मुकाबला करने की सहज प्रेरणा से स्फूर्त थे पहले ही कहा गया कि पत्रकारिता साम्राज्यवादी शक्ति से जूझने का सशक्त हथियार थी। जातीय अस्मिता के उद्धार, उन्नयन के लिए आत्मबलिदान करने के लिए प्रस्तुत वह जमात थी। हिंदी पत्रकारों की पुरानी पीढ़ी का संस्कार इसी कोटि का था, इसकी ओर संकेत करना यहाँ मेरा अभीष्ट है।

हिंदी के प्रथम पत्र 'उदन्त मार्तण्ड' का प्रकाशन हिंदुस्तानियों के हित की प्रेरणा से हुआ था। उसका संकल्प भी साम्राज्यवाद को उखाड़ फेंकने में था। उसकी युयुत्सुमुद्रा परवर्ती काल में 'भारत मित्र' के संपादक एवं भारतेंदु के सहयोगी बाबू बालमुकुंद गुप्त के लेखनों में दिखाई पड़ी। पुराने पत्रकारों की यह दृढ़ धारणा थी कि समाचार पत्र प्रजा का प्रतिनिधि स्वरूप होता है। यह एक महत् प्रनीति थी जिसके प्रति पुराने पत्रकार सचेत रहते थे। अधिक तेज भाषा में कोलकाता के महान हिंदी पत्रकार 'उचितवक्ता' के संपादक पं. दुर्गाप्रसाद मिश्र ने भी अंग्रेजों के अन्यायपूर्ण आचरणों के विरुद्ध आवाज उठाई और राष्ट्रीय प्रेरणा को दीप्त करने वाले वे प्रखर पत्रकार थे।

यहाँ उस युग के हिंदी समाज और जाति के प्रति भी थोड़ा संकेत करना उचित होगा। एक ओर जहाँ विदेशी सरकार की अनुदारता और दमननीति थी, तो दूसरी ओर हिंदीभाषी समाज की विधा विहीन दीनदशा और घोर उदासीनता थी। उस समय एकमात्र शक्ति थी अपनी राष्ट्रीय प्रेरणा। जोखिम से घिरी पत्रों की जिम्मेदारी थी जिसे साधना द्वारा, निर्भीक वाणी के माध्यम से भारतीय पत्रकारों की अतीत पीढ़ी ने- लोकमान्य तिलक, विपिन चंद्रपाल, लाला लाजपत राय, अरविंद घोष, सुरेंद्रनाथ बैनर्जी, कस्तूरि रंग अय्यर, महामना मदनमोहन मालवीय, महात्मा गांधी, सदानंद मिश्र, बालमुकुंद गुप्त, सखाराम गणेश देऊस्कर, बाबूराव विष्णु पराड़कर, माधवराव सप्रे, अंबिका प्रसाद वाजपेयी, रामानंद चटर्जी, लक्ष्मण नारायण गर्दे, माखनलाल चतुर्वेदी, गणेश शंकर विद्यार्थी जैसे मनीषी पत्रकारों ने विधिवत पूरा किया। वास्तव में, उस पुराने युग में पत्रकार की भूमिका सच्चे लोकनायक

की भूमिका थी और उन्हें इसका स्पष्ट बोध था। इतना ही नहीं, एक मनीषी साहित्यकार की तरह दिशाहारा समाज को अपेक्षित दिशा-निर्देश करना, देश की चिति पर छा रहे कुहासे को अपनी दीप्ति से विदीर्ण करना, खंडित संस्कृति चेतना के उन्नयन की सक्रियता, क्षतिग्रस्त प्रजा की प्रतिभा सजगता, वर्तमान को सत्वर भविष्य की ओर उन्मुख करना पत्रकार का शीर्ष दायित्व है। इस दायित्व को पूरा करते हमारी पूर्व पीढ़ी के पत्रकारों को जेल की असह्य यातनाएँ झेलनी पड़ी, प्राणाहुति देनी पड़ी। यहाँ यह कहना समीचीन होगा कि हिंदी पत्रकारिता के नींव-निर्माण में कोलकाता का विशेष अवदान रहा है।

राजाराममोहन राय से लेकर डॉ. राममनोहर लोहिया तक आधुनिक जातीय चिंताधारा के प्राय: प्रत्येक चिंतक तेजस्वी पत्र का संपादन-संचालन करते रहे हैं। उसी प्रकार आधुनिक हिंदी साहित्य के अधिकांश श्रेष्ठ लेखक कहीं न कहीं, किसी न किसी रूप में पत्र-पत्रिकाओं की संपादन-व्यवस्था से संपृक्त रहे हैं, पत्रकार रहे हैं। यह परंपरा भारतेंदु हरिश्चंद्र से शुरू होकर सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' और परवर्ती पीढ़ी के डॉ. धर्मवीर भारती, श्री मनोहर श्याम जोशी और रघुबीर सहाय तक स्पष्ट दिखाई पड़ती है। यहाँ यह स्मरणीय भी है कि कोलकाता के अधिकांश पत्रकार हिंदी के श्रेष्ठ कृति साहित्यकार और विचारक के रूप में विश्रुत रहे हैं। इतना ही नहीं, कोलकाता उन पत्रकारों और साहित्यकारों की साधना-स्थली रहा है जो हिंदी भाषा साहित्य की शक्ति के सबूत हैं। आधुनिक युग के सर्वश्रेष्ठ स्वच्छंदतावादी कवि पं. सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, कोलकाता की हिंदी पत्रकारिता की साहित्यिक उपलब्धि हैं।

यहाँ यह दुहराना जरूरी होगा कि पुरानी पीढ़ी के लिए पत्रकारिता देश सेवा का सशक्त माध्यम थी, यह एक मिशन रहा। समाज का भाषा-संस्कार पत्रकारिता का महत्वपूर्ण प्रयोजन है जिसके प्रति हिंदी की पुरानी पत्रकार पीढ़ी सचेत थी, सजग थी। हिंदी के पत्रकार आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और पं. युगल किशोर तक में भाषा शुद्धता का आग्रह और सजगता थी। उस युग के पत्रकार अनेकानेक प्रतिकूलता के बावजूद अपने समय की चुनौती का सामना करते थे। उस युग के समाज का राजनैतिक संस्कार अविकसित था। अज्ञान की कठोर जमीन से उनकी आस्था की लड़ाई थी। मगर वे उस ऊँचे जातीय आदर्श से प्रेरणास्फूर्त थे। देश प्रेम की प्रेरणा से उन्होंने पत्रकारिता की विकट राह को अपनी यात्रा के लिए चुना था। आज तो स्थिति पूरी तरह बदल गई है। 'भारत मित्र' के माध्यम से भाषा और व्याकरण संबंधी जो विवाद खड़ा हुआ उसका भी आज ऐतिहासिक महत्व है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और बाबू बालमुकुंद गुप्त के भाषा और व्याकरण संबंधी इस संघर्ष का ऐतिहासिक महत्व इस बात से घोषित होता है कि इससे उस युग के सभी मूर्धन्य हिंदी वैयाकरण, आचार्य और पंडितों ने सक्रिय भाग लिया था। इस पत्रिका ने लिपि के प्रश्न को भी बड़े वैचारिक ढंग से उठाया था और भारतवर्ष की सामान्य लिपि के रूप में देवनागरी लिपि की प्रतिष्ठा के आकांक्षी और सतत उद्योगी स्व. जस्टिस शारदाचरण मित्र के महत उपक्रम की। गुप्ता जी ने अपने लेखों द्वारा प्रशंसा और संपुष्टि की थी। गुप्त जी को जब हम उस युग के श्रेष्ठ पत्रकार कहते हैं तो इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि उन्हें राजनीति की नब्ज की सही पहचान थी, भाषा पर असाधारण अधिकार था। वे हिंदी के अप्रतिम शैलीकार और विशिष्ट साहित्यकार थे। डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र जी के शब्दों में हिंदी पत्रकारिता में गुप्त की भूमिका सव्यसाची की भूमिका थी। इसी सहज देश प्रेम की प्रेरणा से भारतेंदु हरिश्चंद्र, प्रताप नारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, बालमुकुंद गुप्त, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने पत्रकारिता और साहित्य के क्षेत्र में बड़ी साधना की थी। इस परंपरा को परवर्तीकाल में अंबिका प्रसाद वाजपेयी, बाबूराम विष्णु पराड़कर, आचार्य शिवपूजन सहाय और अज्ञेय की पत्रकारिता ने विशिष्ट समृद्धि दी। पत्रकारिता के माध्यम से भाषा संस्कार के उन्नयन में पुरानी पीढ़ी के बाद अज्ञेय की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण रही है। भाषा संबंधी अज्ञेय की दृष्टि बालमुकुंद गुप्त के आदर्श के बहुत निकट थी। हिंदी गद्य के भित्ति निर्माताओं में गुप्त जी का अप्रतिम स्थान है; विशिष्ट शैलीकार के रूप में भी 'भारत मित्र' के संपादक की महत्ता को इतिहास में अंकित किया गया है।

मूल्यों के सजग प्रहरी गणेश शंकर विद्यार्थी ने बहुत पहले कामना की थी। 'पैसे का मोह और बल की तृष्णा भारतवर्ष के किसी भी नए पत्रकार को ऊँचे आचरण के पवित्र आदर्श से बहकने न दे।' दुर्भाग्यवश विद्यार्थी की मनोकामना पूरी न हुई और आज भी भारतीय पत्रकारिता आदर्श के ऊँचे धरातल को छोड़कर व्यावसायिकता के चटक प्रलोभनों की गिरफ्त में आ गई। इस प्रकार अपने मूल धर्म और मुख्य भूमिका लोकसेवा संस्कार की भूमिका से विच्छिन्न हो गई। उन्होंने पत्रकारिता का सही अर्थ एक ईमानदार, लोक नायक की भूमिका के रूप में माना था। इस महत् दायित्व को गणेश शंकर विद्यार्थी ने अपने 'प्रताप' के माध्यम से पूरा किया। 'प्रताप' बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध का कदाचित अकेला हिंदी पत्र था जिसे 'वंदेमातरम् 'युगांतर', 'मराठा', केसरी, 'भारत मित्र' की उदग्र चेतना का उन्नायक पत्र कहा जा सकता है। 'प्रताप' संपादक विद्यार्थी ने अपने आदर्श जीवन और स्पृहणीय मृत्यु द्वारा मानवजाति के लिए बड़ा आदर्श उपस्थित किया। उनका बलिदानी व्यक्तित्व महात्मा गांधी जैसे लोकनायक के मन में इस आदर्श मृत्यु की राह से गुजरने की स्पृहा जगा गया।

'कर्मवीर' पत्रिका के संपादक के रूप में भारत के उद्धार के लिए माखनलाल चतुर्वेदी कठोर चुनौतियों को सहने के लिए कटिबद्ध हुए। 'कर्मवीर' हिंदी और जातीय चेतना का प्रमुख तीर्थ बन गया। हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में कथा-शिल्पी प्रेमचंद जी के योगदान का स्मरण उचित होगा।

वे सामान्य अर्थ में पत्रकार नहीं थे। किंतु पत्रकारिता से उनका उतना ही निकट संबंध था जितना भारतेंदु से लेकर धर्मवीर भारती तक प्रायः सभी अग्रणी लेखकों का रहा है। पत्रकारिता के जगत में प्रेमचंद को असुविधाजनक राह से यात्रा करनी पड़ी। प्रेमचंद का कथासंसार भारतीय समाज को उचित दिशा दिखाकर नई शक्ति जगा रहा था। अपने इस जागरण अभियान को अधिक तीव्र बनाने के लिए प्रेमचंद को पत्रकारिता की राह माफिक जान पड़ी। 'हंस', 'जागरण' पत्रिका चलाने में उन्हें पत्रकारिता के व्यावसायिक पक्ष की कठिनाइयों को हल करना आसान नहीं था। नाना प्रकार की समस्याओं से घिरना पड़ा। प्रेस खोलकर प्रेमचंद ने असंख्य समस्याओं को न्योता दे दिया था। घाटा झेलते प्रेमचंद 'हंस' को जिलाए जा रहे थे। 'हंस' की रक्षा के लिए वे 'जागरण' से जुड़े। अपने समय की राजनीति, अर्थनीति और समाजनीति की नब्ज के अचूक पारखी प्रेमचंद ने अपनी कथा कृतियों के साथ संपादकीय पृष्ठ पर साहित्येतर विषयों को उपजीव्य बनाकर तेज टिप्पणियाँ लिखीं।

अंत में, आज की व्यावसायिक प्रलोभनों के अंदर नाना प्रकार की चुनौतियों से वर्तमान पत्रकारिता अस्त हो गई है। एक जमाने में हिंदी ही नहीं, भारतीय पत्रकारिता राजनीति को दिशा देती थी। आज राजनीति पत्रकारिता को अपने निर्देशों-आदेशों पर चला रही है। वर्तमान युग में आर्थिक प्रलोभनों द्वारा पत्रकारिता की जगत को गिराने की चेष्टा चल रही है। पत्रकारिता के राष्ट्रीय संस्कार पर व्यावसायिक कुरुचि का आक्रमण बलवती हो गया है। पत्रकारों की स्वतंत्रता छीनने का सरकारी अभियान शुरू हो गया है। व्यक्ति स्वातंत्र्य को छीनने की नई सरकारी चेष्टा शुरू हो गई है। पत्रों की प्रतिबद्धता का सरकारी आग्रह तेज हो रहा है। लोकतंत्र की आधार शिला को तोड़ने का उपक्रम शुरू हो गया है। दुख इस बात का है कि इसके प्रतिरोध की आवाज नहीं उठ रही है। पुरानी पीढ़ी में पराड़कर जी ने महात्मा गांधी जैसे व्यक्ति को टोका था। किंतु आज अतिसामान्य व्यक्ति को भी टोकने वाली सजगता और साहस नहीं रह गया है। प्रेरणा विदेश से आयात हो रही है, परिणाम देश भोग रहा है। स्वदेशी समस्या का हल हम पाश्चात्य लोक में खोज रहे हैं। पिछले वर्षों में धरती माता की उदात्त भावनाएँ कुंठित हुई हैं, कर्तव्य भावना कमजोर तो हो गई है या टूट रही है। हिंदी भाषी समाज और हिंदी पत्रकारिता का आज यह दुर्भाग्य है कि पुरानी पीढ़ी की तपस्या के बावजूद हिंदी समाज में हिंदी पत्रों के प्रति वैसी रुचि नहीं उत्पन्न हुई जैसी अन्य भारतीय भाषाओं में देखी जाती हैं। आज हिंदी में एक भी ऐसी साहित्यिक पत्रिका नहीं जिसमें हिंदी मनीषा का सही और समग्र प्रतिनिधित्व हो। अपनी इस हालत को केवल राष्ट्रभाषा का ढोल गले में लटका लेने से हम विदूषक की भूमिका में पहुँच जाएँगे। समृद्धि के लिए सतत साधना की जरूरत होती है। पिछले कुछ दशकों में मेरी ऐसी धारणा है कि स्वातंत्र्योत्तर काल में पत्रकार

अपने महत् दायित्व के प्रति सचेत नहीं रहे हैं। ऊँची प्रेरणा और बड़े लक्ष्य को लेकर हिंदी पत्रकारिता की जो यात्रा शुरू हुई थी वह आज इस दशा को पहुँच गई है। इस अधोन्मुखी परिदृश्य को बदलना होगा। स्वतंत्र भारत की सबसे बड़ी त्रासदी को रेखांकित करना आवश्यक है। आज फिर से पत्रकारिता को मूल्यों का प्रहरी बनाना होगा, मूल्य बोध को जिलाए रखना होगा। यही आज हमारी सबसे बड़ी चुनौती है।

– 'गुरु कृपा', प्लॉट 790, डॉ. रामास्वामी सलाइ, के. के. नगर (पश्चिम), चेन्नई-600078

❑❑❑

# प्रगतिवाद : छायावाद विरोधी तेवर

**आचार्य डॉ. केशवराम शर्मा**

हिंदी-कविता में जिस प्रकार द्विवेदी-युग की इतिवृत्तात्मकता के विरोधस्वरूप छायावाद का जन्म हुआ था, ठीक उसी प्रकार छायावाद की जीवनशून्य वायवी काव्यधारा की प्रतिक्रिया के रूप में प्रगतिवादी काव्य का शुभारंभ हुआ। छायावादी कवि अपने युग की समस्याओं से उदासीन, स्वयं की सुनहली कल्पनाओं में खोये हुए, जब किसी वायवी लोक में विचरण कर रहे थे, तब मार्क्सवादी दर्शन के आलोक में सामाजिक चेतना पर आधृत काव्य, प्रगतिवादी काव्य-धारा के रूप में निस्सृत हुआ। छायावादी कवियों की पलायनवादी तथा निराशावादी प्रवृत्ति के अतिरिक्त अनेक राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय परिस्थितियाँ भी इस काव्य की प्रेरक रही हैं। इस समय तक रूस की जनता सभी प्रकार की विसंगतियों तथा संकटों से उबरकर एक ऐसी साम्यवादी व्यवस्था स्थापित करने में समर्थ हो चुकी थी, जिसमें सभी के लिए विकास के समान अवसर थे। भारतीय जन-मानस भी ऐसी ही व्यवस्था लाने के लिए छटपटा रहा था जिस का प्रतिफलन प्रगतिवादी साहित्य के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित है।

देश की तत्कालीन आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक परिस्थितियों ने भी प्रगतिवादी कविता के अनुकूल वातावरण प्रस्तुत करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया था। विदेशी शासकों के प्रयासों के फलस्वरूप भारत के लगभग सभी उद्योग धंधों का केंद्रीकरण हो चुका था और हमारा समाज शोषक तथा शोषित वर्गों के रूप में बँटता जा रहा था। ऐसी स्थिति में सामंतवाद और पूंजीवाद की विभीषिकाओं से त्रस्त सर्वहारा वर्ग अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ने को विवश था। परिस्थितियों के अनुकूल प्रगतिवादी कवियों ने निर्भीक होकर शोषक वर्ग की निंदा तथा शोषितों के उत्पीड़न और क्रंदन को वाणी प्रदान की। कार्लमार्क्स की जिस विचारधारा के फलस्वरूप रूस में साम्यवादी समाज की स्थापना हुई थी, उसका संपूर्ण विश्व स्वागत कर रहा था जिसके परिणामस्वरूप उपनिवेशवादियों तथा साम्राज्यवादी शक्तियों को प्रबल आघात पहुँच रहा था। साथ ही, इस साम्यवादी क्रांति की सफलता ने विश्वभर के साहित्यकारों को एक नई चेतना प्रदान की जिसके फलस्वरूप यत्र-तत्र समाजवादी लेखकों के संगठन अस्तित्व में आ गए।

आंग्लभाषा के विद्वान लेखक इ. एम. फोरेस्टर की अध्यक्षता में 1935 ई. में पेरिस में 'प्रोग्रेसिव राईटर्स एसोसिएशन' का प्रथम अधिवेशन हुआ था। इसी वर्ष भारत में भी डॉ. मुल्कराज आनंद तथा सज्जाद जहीर के प्रयासों से लखनऊ में 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना हुई थी, जिसका प्रथम अधिवेशन लखनऊ में ही 1936 ई. में प्रसिद्ध उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की अध्यक्षता में संपन्न हुआ था। इस अधिवेशन ने प्रगतिवादी साहित्य के लिए मील के पत्थर का कार्य किया।

प्रगतिवादी कवियों ने स्थूल यथार्थ को ही अपने काव्य का विषय बनाया और समाज की पीड़ा, विषमता, अज्ञान तथा शोषकों के दमन चक्र का सजीव चित्रण

किया। इस काव्य की पृष्ठभूमि में कवियों का देशप्रेम तथा उनकी राष्ट्रीयता की भावना सर्वोपरि है। रामेश्वर शर्मा के शब्दों में - "प्रगतिवाद कोई वाद नहीं वरन जीवन के प्रति एक स्वस्थ दृष्टिकोण है, प्रगतिशील साहित्य जनता की उस महान आशा, आकांक्षा और कर्मेक्षा की अभिव्यंजना है, समाज और मनुष्य की आर्थिक, राजनैतिक एवं बौद्धिक दासता से मुक्त होने की प्रेरणा देती है।"

हिंदी के प्राय: सभी प्रमुख कवियों ने प्रगतिवादी काव्य की श्रीवृद्धि की है। राष्ट्रकवि दिनकर ने हिमालय को संबोधित करते हुए उसे जगाने का उपक्रम किया है- *नवयुग शंखध्वनि जगा रही, तू जाग-जाग मेरे विशाल*। इसी प्रकार इन की 'हुँकार', 'रसवंती', 'रेणुका' आदि रचनाओं में भी प्रगतिवाद का स्वर अनेक बार गूंज रहा है। आपकी 'वह तोड़ती पत्थर', 'नए पत्ते', 'कुकुर मुत्ता' आदि रचनाओं में यही स्वर मुखर है। कविवर पंत की 'ज्योत्स्ना' 'युगांत' तथा 'युगवाणी' रचनाओं में प्रगतिवादी विचारधारा स्पष्ट रूप से परिलक्षित है। यदि बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' कवि से उथल-पुथल मचाने का आग्रह करते हैं, तो भगवती चरण वर्मा 'चरमर-चरमर चूँ चरर-मरर जा रही चली भैंसा गाड़ी' के माध्यम से ऋणग्रस्त किसान तथा मजदूर के शोषण की व्यथा-कथा कहते हैं।

इसी प्रकार 'फूल नहीं रंग बोलते हैं' में संग्रहीत 'माँझी-माँझी न बजाओ वंशी', 'वसंती हवा' आदि कविताओं में केदारनाथ अग्रवाल की प्रगतिवादी विचारधारा की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है। इस काल के कवियों में बाबा नागार्जुन का अपना विशिष्ट स्थान है। सामाजिक कुरूपता, धार्मिक अंधविश्वास तथा कुत्सित राजनीति आदि पर आपके व्यंग्य बहुत ही रोचक तथा मार्मिक हैं। 'युगधारा' के अतिरिक्त 'तुम्हारी दंतुरित मुस्कान', सिंदूर तिलकिल भाल आदि कविताएँ इस दृष्टिकोण से बहुत महत्वपूर्ण हैं। रांगेय राघव का काव्यसंकलन 'राह के दीपक' में भी प्रगतिवादी स्वर की अच्छी अभिव्यक्ति है। त्रिलोचन के काव्य-संकलन 'मिट्टी की बारात' में सामाजिक यथार्थ का सुंदर चित्रण है। प्रगतिवाद के अन्य उल्लेखनीय कवियों में डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' डॉ. राम विलास शर्मा, मुक्तिबोध, अज्ञेय, नरेश मेहता, शमशेर बहादुर सिंह, नरेंद्र शर्मा आदि प्रमुख हैं।

जिन परिस्थितियों ने राजनीति में साम्यवाद या मार्क्सवाद को जन्म दिया, वे ही परिस्थितियाँ साहित्य में प्रगतिवाद की जनक हैं। यद्यपि प्रगतिवाद को 1936 से 1943 ई. तक केवल सात वर्ष तक ही फलने-फूलने का अवकाश मिला तथापि इस युग की भावपक्षीय तथा कलापक्षीय अनेक ऐसी विशेषताएँ हैं, जो इसके अस्तित्व को सदैव अम्लान रखेंगी।

प्रगतिवाद का जन्म ही मिल-मालिक, उद्योगपति, पूंजीपति तथा जमींदारों से संघर्ष करने के लिए हुआ था। इस युग के सभी कवियों ने दीन-हीन पीड़ित समाज की दुखद स्थिति का चित्रण करते हुए, उस के लिए उत्तरदायी संपन्न वर्ग की भर्त्सना की है। इस संदर्भ में राष्ट्रपति दिनकर की निम्नलिखित पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं-

*श्वानों को मिलता दूध, वस्त्र, भूखे बालक अकुलाते हैं।*
*माँ की हड्डी से चिपट, ठिठुर जाड़ों की रात बिताते हैं।*
*युवती की लज्जा वसन बेच, जब ब्याज चुकाए जाते हैं।*
*मिल-मालिक तेल-फुलेलों पर, पानी-सा द्रव्य बहाते हैं।।*

सर्वहारा समाज के पास खोने के लिए कुछ है ही नहीं। अत: वे तिल-तिलकर जलने से अच्छा यही समझते हैं कि पूंजीपतियों का किसी भी प्रकार विनाश हो, भले ही उससे अपना भी अनिष्ट हो जाए। शोषक वर्ग के समूल विनाश के लिए इन्हें सर्वनाश भी अभीष्ट है। नवीन यदि- "कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल-पुथल मच जाए" की कामना करते हैं, तो पंत एक और कदम आगे बढ़कर कोयल से विनती करते हैं-

*गा, कोकिल, बराता पावक कण*
*नष्ट-भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन,*
*ध्वंस भ्रष्ट जग के जड़ बंधन।*
*पावक पग धर आवे नूतन*
*हो पल्लवित नव मानवपन।*

प्रगतिवादी काव्य ने विश्व के सभी शोषित प्राणियों को वाणी प्रदान की है। यहाँ केवल दो ही वर्ग हैं- शोषक वर्ग तथा शोषित वर्ग। शोषित सहानुभूति का पात्र

है। भले ही वह हिंदू, मुसलमान, सिख, ईसाई कोई भी क्यों न हो। समता की भावना के प्रति नरेंद्र शर्मा के विचार प्रस्तुत हैं-

*जाने कब तक घाव भरेंगे, इस घायल मानवता के।*
*जाने कब तक सच्चे होंगे, सपने सबकी समता के।।*

ये सभी कवि श्रम के उपासक हैं। किसान तथा मजदूर दोनों ही श्रमजीवी हैं और दोनों के प्रति सभी कवियों की सहानुभूति विशेष है। ग्राम्य जीवन आज भी कष्टों से भरा हुआ है, उस समय की तो बात ही कुछ और थी। मानव को सुंदरतम कहने वाले कवि पंत अपनी 'ग्राम्या' रचना में निराश होकर कह उठते हैं-

*यह तो मानव-लोक नहीं रे, यह है नरक अपरिचित।*
यहाँ अकेला मानव ही रे, चिर विषण्ण, जीवन्मृत।

शोषित वर्ग में भी, पुरुषों की अपेक्षा नारी की स्थिति अधिक दयनीय है। भले ही उसके नाम के साथ 'देवी' शब्द का प्रयोग करके उसे आदर से संबोधित किया जाए, किंतु रही है वह युग-युग से दासी ही। नारी की इस स्थिति से खिन्न होकर प्रगतिवादी कवि पंत पुकार उठते हैं-

"योनि नहीं है रे नारी, वह भी मानवी प्रतिष्ठित।
उसे पूर्ण स्वाधीन करो, वह रहे न नर पर आश्रित।।"

शोषित-पीड़ित मानव के कल्याण की कामना को लेकर प्रगतिवादी कवि अग्रसर हुए हैं। पीड़ितों की वकालत करना इनका प्रथम लक्ष्य है। शोषित-वर्ग की दीन-हीन दशा पर आँसू बहाते हुए कविवर 'अंचल' कहते हैं-

*यह नस्ल जिसे कहते मानव, कीड़ों से आज गई बीती।*
*बुझ जाती तो आश्चर्य न था, हैरत है पर कैसे जीती।।*

आज के संघर्षपूर्ण युग में सभी के सामने अनेक जटिल समस्याएँ हैं। प्रगतिवादी कवि को समाज के कटु सत्यों की उपेक्षा करके ऐश्वर्य तथा विलास की प्रशंसा करना कदापि अभीष्ट नहीं है। संसार की सात आश्चर्यजनक वस्तुओं में से एक ताजमहल को देखकर कविवर पंत का चिंतन किस दिशा में जाता है, इसकी एक झलक देखिए-

*हाय, मत्यु का ऐसा अमर अपार्थिव पूजन।*
*जब विषण्ण निर्जीव पड़ा हो जग का जीवन।।*
*शव को दें हम रूप-रंग जीवित मानव का।*
*और मानव को कुत्सित चित्र बना दे भव का।।*

साम्यवाद प्रगतिवाद का मूल है। हिंदी का प्रगतिवादी साहित्य साम्यवाद से सर्वाधिक प्रेरणा ग्रहण करता है। अत: वहाँ की लाल सेना की प्रशंसा करते हुए कविवर सुमन कहते हैं-

*युगों की सड़ी रूढ़ियों को कुचलती,*
*लहर की लहर से सदा ही मचलती,*
*अँधेरी निशा में मशालों-सी जलती,*
*चली आ रही है बढ़ती लाल सेना।*

प्रगतिवादी काव्य स्थूल यथार्थ पर आधृत है। अत: इन कवियों ने कुरूपता का चित्रण करने में भी संकोच नहीं किया। भिक्षुओं की एक झलक प्रस्तुत है-

*चिथड़ों में से दुर्गंध कड़ी*
*रोगों से उनकी देह सड़ी।*
*उनके मुख से भी छूट रही*
*कलुषित वचनों की एक झड़ी।।*

स्थूल यथार्थ का निष्पक्ष तथा यथातथ्य चित्रण करने की भावना से अभिभूत प्रगतिवादी कवियों ने कहीं-कहीं कुरूपता, अश्लीलता तथा नग्नता का ऐसा चित्रण प्रस्तुत कर दिया है जो साहित्य के नाम पर कलंक-सा प्रतीत होता है। इन साहित्यकारों ने मौखिक सहानुभूति से शोषित वर्ग को जगाने का प्रयास तो किया है, किंतु चाहकर भी ये उनका कोई हित-साधन नहीं कर सके। हमारे साहित्य में 'सत्यम्', 'शिवम्' तथा 'सुंदरम' पर बल दिया गया है, किंतु खेद है कि इस साहित्य में कवियों का एकमात्र आधार 'सत्यम्' ही रह गया है, जो उसके अधूरेपन का द्योतक है।

प्रगतिवाद की स्थिति पर प्रकाश डालते हुए डॉ. नगेंद्र कहते हैं- "भारत में प्रगतिवाद का भविष्य साम्यवाद के साथ बँधा हुआ है, लेकिन फिर भी आधुनिक काव्य के अध्येता को आदर और धैयपूर्वक इस का अध्ययन करना होगा। इसने हिंदी काव्य को एक जीवंत चेतना प्रदान की है, इसका निषेध नहीं किया जा सकता।"

वस्तुतः प्रगतिवादी साहित्य हिंदी काव्याकाश में सदैव जगमगाता रहेगा। इसी से हिंदी-काव्य जगत् में क्रांति का स्वर गूंजा है, इसी ने मूक-बधिरों को बोलना और सुनना सिखाया है, इसी ने युगों से बनी हुई असंतोष की ज्वाला को धधकाया है और इसी साहित्य ने निर्जीव शोषितों में प्राण प्रतिष्ठा की है। इन कवियों ने अवतार कोटि के महापुरुषों चक्रवर्ती सम्राटों को अपने काव्य का विषय न बनाकर, जनसाधारण की स्थिति का चिंतन-मनन किया है और इस प्रकार कविता सुंदरी को आकाश से पृथ्वी पर उतारने का श्रेय इन्हीं को है।

– बी-59, सड़क नं. 3, उत्तरी छज्जू पुर, दिल्ली-110094

❑❑❑

# आधी आबादी और अरुण कमल की कविता

**सुश्री प्रीति प्रकाश**
**डॉ. अनुशब्द**

*मैंने उसे इतना डांटा*
*गालियाँ दी*
*दो तीन बार पीटा भी*
*फिर भी चुपचाप सारा काम करती गई.....*
*वह कभी बोली क्यों नहीं*
*एक बार भी बोलती*[1].....

समकालीन हिंदी कविता में अरुण कमल का महत्वपूर्ण हस्तक्षेप है। रचना और आलोचना दोनों ही क्षेत्रों में उनकी गहरी पैठ है। एक से बढ़कर एक उनके कुल पाँच कविता संग्रह हैं- 'सबूत', 'नए इलाके में', 'पुतली में संसार', 'अपनी केवल धार' और 'मैं वो शंख महाशंख'। इनके काव्य संग्रहों का पाट बहुत चौड़ा है और संवेदना की गहराई तो उनमें है ही। 'गोलमेज' और 'कविता और समय' उनकी आलोचनात्मक प्रतिभा के प्रतिमान है। जिनमें समय-समय पर उनके लिखे आलेखों का संकलन है। उनकी कविताओं का स्वर समाज और राजनीति के कई पहलुओं को बड़ी संजीदगी के साथ छूता है। राजनीति का राष्ट्रीय अंतरराष्ट्रीय संदर्भ हो या समाज का पिछड़ा वर्ग हो सब उनकी कविताओं में स्थानीय विशेषताओं के साथ उपस्थित है। उनकी कविताओं में स्त्री पात्र समाजोनुकूल अपनी उपस्थिति दर्ज करवाती है।

उपर्युक्त कविता 'एक बार भी बोलती' वह यक्ष प्रश्न खड़ा करती है जिसके उत्तर की प्रतीक्षा शायद आज भी हर स्त्री को है। आखिर वह कौन सा सामाजिक ढांचा है जो महिलाओं को इतना कमजोर, इतना बेबस बना देता है कि वे मजबूर हो जाती है तमाम रंजो सितम के साथ जिंदगी गुजर-बसर करने के लिए। कई बार तो वे अपनी इस मजबूरी को अपनी नियति मान लेती हैं। अरुण कमल हिंदी कविता में शोषितों और पीड़ितों के प्रतिनिधि के रूप में जाने जाते हैं। उनकी कविता में समाज के वंचित वर्ग को वाणी मिलती है। "जिसका कोई प्रतिनिधि नहीं होता है उसका प्रतिनिधि कवि होता है" इस वाक्य से कवि न सिर्फ इत्तेफाक रखते हैं बल्कि इसे अपने लेखन में पूरी तरह आत्मसात करते हैं। यदि उनकी कविताओं में स्त्री जीवन की झलक देखने का प्रयास करें तो वहाँ भी पढ़ी लिखी और समाज के संभ्रात वर्ग से आने वाली महिलाएँ कम मिलती हैं। अरुण कमल की कविताओं में तो ग्राम वधुएँ हैं, रोजी-रोटी की जुगाड़ में लगी निम्नवर्गीय महिला है, घर-घर जाकर काम करने वाली कुबड़ी काकी है और जिजीविषा के साथ रोजमर्रा की जिंदगी से संघर्ष कर रही औरतें हैं। अरुण कमल इन महिलाओं की समस्याओं को अपनी लेखनी से आवाज़ देते हैं।

प्रसिद्ध वैद्यक चरक ने लिखा था कि समस्या जहाँ उत्पन्न होती है उसका निदान भी वहीं होता है। इसलिए चरक की बात मानते हुए चूँकि महिलाओं की चुप्पी का प्रश्न अरुण कमल की कविता से सामने आया है इसलिए जवाब भी अरुण कमल की कविताओं

में ही ढूँढने की कोशिश करते हैं।

इस क्रम में सबसे पहला प्रश्न आता है कि आखिर इस चुप्पी की नींव कहाँ पड़ती है। 'दूसरा आँगन' कविता में कवि लिखते हैं-

*और भीतर एक औरत के कलेजे खखोरती खांसी*
*और एक प्यारी बच्ची जो अपनी एक आँख ढांप तुम्हें ताकती है*
*और उसका नन्हा-सा भाई बताता है 'शरम कर रही है'*
*ज्यूँही तुम जानते हो कि वह भी तुम्हारी तरह कर्ज में डूबा है*
*उसको भी एक बहन है ब्याहने को*
*और वह कहता है हमारे यहाँ दहेज बहुत है*
*तब तुम भीतर- भीतर भहरने लगते हो*[2]

भहरने की वजह है 'जो दुख तोरा सो दुख मोरा'। यानी की ब्याहने लायक बहन होना खुद में एक समस्या है जिससे निजात पाना कोई आसान काम नहीं है। 'निजात' शब्द इसलिए क्योंकि यह परिवार के दुख की वजह है और परिवार इस दुख से मुक्त होना चाहता है जो उसे फिलहाल संभव नहीं लग रहा है। अब आप यह सोचें कि जिस इंसान को यह एहसास हो जाए कि वह इंसान नहीं बोझ है, परिवार के दुख और परेशानी की वजह तो वह अपने भीतर कितनी उमंग, कितनी खुशी और कितनी वाक्पटुता शेष रख सकता है। शुरुआती पंक्तियों को देखें तो घर के भीतर एक औरत है जिसके होने का पता उसकी खांसी से लगता है। यानी कि घर आनेवाले मेहमान की खातिरदारी करने की जिम्मेदारी, चाय-नाश्ते का इंतजाम करना औरत का काम है लेकिन मेहमान के सामने आने का हक उसका नहीं है। यहाँ तक कि नन्ही-सी प्यारी बच्ची ने भी शायद अपनी माँ से अभी ही शर्म करना सीख लिया है और वह एक आँख ढांप कर ताक रही है वहीं छोटा भाई भी इसे बहुत सामान्य बल्कि यूँ कहें व्यवहार का अनिवार्य हिस्सा समझता है इसलिए स्पष्ट करता है कि वह 'शर्म कर रही है'। बिलकुल यहीं बीज पड़ती है सामाजिक संरचना की जो हर कदम पर महिलाओं के व्यवहार का निर्धारण करती है। शर्म और हया उसका गहना बनकर सामने आते हैं क्योंकि उन्हें एक दिन ससुराल जाना है। अब यह प्रश्न उठता है कि क्या होगा यदि लड़कियां ससुराल न जाए यानी अगर उनकी शादी न हो-

*कल्याणी! कल्याणी!*
*आया है मेरा मँझला भाई*
*उसी से होगी तेरी शादी, कल्याणी,*
*देख ले लड़का, है न पसंद?.....*
*जब भी आया है कोई भाई किसी बहू का*
*यही होगा*
*सबसे होगा कल्याणी का ब्याह तय*
*मजाक का रिश्ता जो ठहरा-*
*बचपन से रह गई इस घर में कल्याणी*
*बच्चा खेलाती, खाना बनाती, सोहर गाती, बेना डोलाती।.....*
कल्याणी कुछ नहीं बोलती।[3]

कानून भले ही लड़कियों को लड़कों के बराबर संपत्ति में अधिकार देता है पर कानून और कल्याणी के बीच की दूरी आज भी बहुत ज्यादा है। जिन लड़कियों की शादी नहीं होती, या शादी नहीं टिक पाती अमूमन उन्हें मायके में भी पैतृक हक से महरूम रखा जाता है। भाई- भावज के रहमो-करम पर जब तक गुजारा होता है तब तक होता है वरना वो अपनी योग्यता और क्षमता के हिसाब से काम ढूँढ लेती हैं और तमाम उम्र उस काम को करते हुए और अपने पूर्वजन्म के पापों का प्रायश्चित करते हुए बिता देती हैं। इसलिए माँ बाप की यह कोशिश रहती है कि जैसे भी हो बेटी का ब्याह कर 'उसकी नैया पार लगा देनी चाहिए'। पर क्या हमारे सुंसस्कृत समाज में नैया पार लगा देना इतना आसान काम है? इसे समझने के लिए एक दूसरी कविता देखते हैं-

*और बारात दरवाजे लगी*
*रात बारह बजे*
*किसी तरह वर के पिता को मनाया गया*
*कुछ और भेटा गया, कुछ और गछा गया।.....*
*वर कुछ रूठा फिर छोटा बहनोई*
*बाकी बाराती जेवनार पर टूटे।*
*अंदर कन्या थी श्लथ*

*बाहर समाज था, जन था शतपथ।*[4]

यहाँ समाज का दूसरा चित्र सामने आता है। शादी विवाह तो मानो लड़के वालों के लिए अपने दादा परदादाओं के भी ख्वाब पूरे करने का वक्त होता है और वह भी लड़की वालों के पैसे से। दहेज में मोटी रकम वसूल करने के बाद भी हर अवसर पर पैसे उगाहने के मौके तलाशे जाते हैं। कभी लड़के का फूफा रूठता है तो कभी उसका जीजा, और नहीं तो कभी वर महाशय भी रूठ जाते हैं पल्सर मोटरसाईकल या सोने की चेन के लिए। बारातियों को तो नाच-गाने और उत्तम खाने के सिवाय और किसी से कोई मतलब ही नहीं होता है। पर इस पूरे उपक्रम में लडकी का आत्मविश्वास बार-बार छलनी होता है। यहाँ से उसके एक नए जीवन की शुरुआत होती है जिसकी नींव पड़ती है ग्लानि, दुख और बेबसी से। ससुराल में कदम रखने के साथ उसकी जिंदगी एक तयशुदा ढर्रे पर चली आती है। आखिर कौन सा है यह ढर्रा, एक बार फिर समझने की कोशिश करते हैं अरुण कमल की ही कविता से-

*जैसे रो धो कर, चुप हो हाथ-मुँह धो*
*अंतिम हिचकी भर*
*वापस चूल्हे के पास लौटती है नई वधू*
*भाई के जाने के बाद।*[5]

विवाह के बाद औरत के जीवन की यही कहानी होती है। चाहे वह सुख में हो या दुख में चूल्हा तो उसे फूंकना ही होता है क्योंकि अब वह बेटी नहीं बहू बन गई और अब उसपर तमाम जिम्मेदारियाँ आ गई हैं।

*घर के आँगन में वो नवोढ़ा भींगती नाचती।*[6]

निश्चित तौर पर कई रसिक हृदय वाले पाठकों को यह पंक्ति स्त्री उन्मुक्तता की लग रही होगी पर क्या आप उस नवोढ़ा के स्थान पर किसी पुरुष की कल्पना कर सकते हैं। सामान्यत: ऐसा संभव नहीं लगता है। हो सकता है आपको ऐसा लगे कि शायद पुरुषों की भीगने में कोई रुचि नहीं होती है और न ही उनके पास इतना वक्त होता है। इस अवधारणा को समझने के लिए एक बार फिर हम बचपन की ओर रुख करें। मैदानों में बारिश में भींगकर बच्चों को क्रिकेट खेलते हुए आपने कई बार देखा होगा। बच्चियों को कितनी बार मैदान में बारिश में भींगते हुए बेफिक्र होकर खेलते देखा है? कागज की नाव बनाकर बारिश में तैरना भी लड़कों का ही शौक होता है। बारिश होते ही शर्ट उतार कर हो-हल्ला मचाना, सड़कों पर भागना भी लड़कों का ही शौक होता है। बड़े होने पर भी चूँकि उनका ज्यादातर वक्त घर से बाहर ही गुजरता है इसलिए गाहे-बगाहे बारिश में भीगने का शौक पूरा होता रहता है। या यूँ कहें कि कुछ समय बाद उन्हें इसकी आदत पड़ जाती है और उनके लिए इस क्रिया में कोई विशिष्टता शेष नहीं रह जाती। पर जब बात लड़कियों की आती है तो बारिश होने पर शुरुआत में वो भाइयों के साथ कागज की नाव तैराने का शायद अवसर पा लें, या कुछ समय तक शायद छत पर छप-छपाक भी कर लें पर धीरे-धीरे उनकी इस उन्मुक्तता पर विराम लगना शुरू हो जाता है। शादी के बाद तो यह पाबंदी और भी बढ़ जाती है, इसलिए बारिश होने पर वह घर के आँगन में बारिश में भीगने चली आती है और इस अप्रत्याशित और दुर्लभ खुशी से विभोर हो नाच उठती है।

*नहीं, नहीं मैंने कुछ नहीं देखा,*
*मैं अंदर बेसन घोल रही थी।*[7]
*किसी के घर का ओसारा था,*
*सामने आँगन में औरतें थीं दो, बर्तन मल रही थीं,*
*एक ने ताका*[8]
*वह स्त्री फटक रही है गेंहू,*
*दोनों हाथ सूप को उठाते, गिराते।*[9]

ऊपर की पंक्तियों में उन कामों का जिक्र है जो औरतों के खातों में दर्ज होते हैं और जिन्हें काम में गिना भी नहीं जाता है। यदि इन पंक्तियों से लिंगसूचक शब्द हटा भी दिया जाए तो भी बेसन घोलना, आँगन में बैठ कर बर्तन धोना, गेहूँ फटकना आदि ऐसे काम हैं जिन्हें करते हुए पुरुषों की छवियाँ हमारे जेहन में नहीं आती। यहाँ तक कि अगर प्यार में पूरी तरह पगी कविता भी देखें तो भी पत्नी की याद घर की सफाई देखकर ही आती रहती है-

*प्याज की तेज गंध हींग जीरे की कपूर की गंध*
*मुझे किसी औरत की गंध लग रही है.....*
*मैंने कभी यह घड़ी बंद नहीं देखी*
*जब से आ रहा हूँ*
*और चाय के प्याले की यह डंडी कितनी साफ है*
*कितना साफ है शीशे के गिलास में पानी*
*इतना थिरा थिरा घर उनके हाथों से चाला हुआ*[10]

सचमुच साफ घर कितना अच्छा लगता है न! वह औरत ही तो होती है जो मकान को घर बनाती है। तभी तो उसके नहीं रहने के बाद भी घर का कोना-कोना उसे याद करता है। पर इस कविता के साथ अब जरा उस कविता का बाकी हिस्सा पढ़ते है जिससे हमने इस आलेख की शुरुआत की थी।

*पानी का गिलास हाथ में लेने से पहले*
*मैंने तीन बार दौड़ाया*
*गिलास गंदा है*
*पानी में चीटी है*
*गिलास पूरा भरा नहीं है*
*और वह चुपचाप अपनी गलती मानकर*
*दौड़ती रही और जब मैं पानी पी चुका*
*धीरे से बोली-*
*पानी अच्छा था?*
*और मेरा गुस्सा बढ़ गया*
*इससे ज्यादा कोई किसी को तंग भी नहीं कर सकता*
*आखिर वह पत्नी थी मेरी*
*और एक दिन सबके सामने, मेहमानों और घर के लोगों के सामने*
*मैंने उसे बुरी तरह डांटा*
*फिर भी वह कुछ नहीं बोली, रोई भी नहीं* [11]

अगर दोनों कविताओं को एक-दूसरे का पूरक मानकर पढ़ें तो उस सामाजिक ताने-बाने की रूपरेखा कुछ-कुछ स्पष्ट होने लगती है जिसने औरत को इतना कमजोर और कमतर बना दिया है कि तमाम रंजो-सितम सहने के बाद भी उसके मुँह से विद्रोह का एक शब्द नहीं फूटता। पहली कविता में पत्नी से प्रेम की एक वजह उसका गृहकार्य दक्ष होना है। यहाँ से एक पैमाना बनता सा दिखता है, अच्छी पत्नी का। घड़ी में बैटरी का बदलना, घर साफ होना, गिलास में साफ पानी होना, कप का साफ होना, प्याज, हींग आदि डालकर सुरुचिपूर्ण भोजन बनाना जैसे तमाम ऐसे पक्ष हैं जो पति को पत्नी की याद दिला रहे हैं। यानी अगर पत्नी ये सब काम नहीं करती है तो पुरुष उसे डांटता है, वह भी सरेआम और पत्नी विरोध में एक शब्द भी नहीं कहती।

अरुण कमल कविता को समाज का प्रतिरूप मानते हैं और कविता में मौजूदा हालात को ही चित्रित करते हैं। शायद इसलिए जो कविताएँ उन्होंने अलग-अलग विषयों पर लिखी हैं उन में भी सामाजिक संरचना के सूत्र मिल जाते हैं। ये सूत्र समाज में महिलाओं की स्थिति के बारे में भी इशारा करते हैं।

समाज का रवैया हमेशा से स्त्री और पुरुषों के प्रति अलग- अलग रहा है। स्त्रियों को संपत्ति सदृश समझा जाता है और उसकी शुचिता और उसके लज्जाशील व्यवहार को परिवार की मर्यादा के साथ जोड़ा जाता है। ऐसा भी तभी होता है जब स्त्रियों को अच्छा परिवार मिल जाए। अगर परिवार अच्छा न रहा तब तो उन्हें दर दर की ठोकरे खानी पड़ती हैं-

*वह बार-बार भागती रही*
*ज्यों अचानक किसी ने नींद में पुकारा*
*कभी किसी मंदिर की सीढ़ी पर बैठी रही घंटो*
*और फिर अँधेरा होने पर लौटी*
× × × ×
*जानती थी वो कहीं कोई रास्ता नहीं है*
*कहीं कोई रास्ता नहीं है*
*कहीं कोई अंतिम आसरा नहीं है* [15]

कई बार औरत को पता होता है कि उसके साथ गलत हो रहा है एवं उसे इस कृत्य से बचना चाहिए और वह बचने की कोशिश भी करती है। हर बार वह भागती है और कोई ठिकाना ढूँढती है पर सफल नहीं हो पाती। ऐसी परिस्थिति में फिर उसके पास अवसर नहीं बचता। वह फिर उसी घर में आ जाती है जहाँ उसकी डोली आई थी और कायदे से जहाँ से उसकी अर्थी उठनी चाहिए। पर यहाँ एक और बात है जो इस बोझिल वातावरण में भी जीने की वजह बन रही है। वह बात है मुक्ति की आकांक्षा। यह वह आकांक्षा है जो उसे बार-बार बेड़ियाँ तोड़ भागने को प्रेरित करती है। संभवत: कवि भी इस आकांक्षा से प्रेरित होते हैं और तुरंत जन्मी बच्ची को भरोसा देते हैं कि सब ठीक हो जाएगा-

*ओ नन्ही-सी बच्ची*
*क्या हुआ जो तुम्हे किसी ने चूमा तक नहीं*
*तुम्हारी माँ मुँह फेर रोती रही रात भर*
*और तुम्हारा पिता लौट गया बाहर ही बाहर*
*क्या हुआ जो तुम्हारी दादी ने बधावे नहीं दिए*
*और उनका यह आँगन पंवरियों की ढोलकों से*

*आबाद नहीं हुआ*
*तुम रोती रही, रोती रही*
*और किसी ने चूमा तक नहीं*
.....
*खोलो तुम आँख*
*देखो*
*भविष्य अपने दोनों हाथों से संवारता है तुम्हारा चेहरा*
*तुम कल के हर बच्चे से सुंदर और साफ हो*
*जिस दादी ने जूठन खाकर ही गुजार दी जिंदगी*
*जिस माँ ने अपने पति की मार चुपचाप सही*
*और जिस पिता ने देखा है तिलक-दहेज का क्रूर व्यापार*
*वे कैसे खुश होंगे?*
*लेकिन आज वही नहीं है दुनिया उतनी कठोर*
*जो कल या परसों थी*
*समय के प्रवाह में*
*तुम्हारे ही लिए घुल रही है दुनिया*[16]

**संदर्भ सूची:**


1. अरुण कमल, एक बार भी बोलती (सबूत), वाणी प्रकाशन,दिल्ली, नवीनतम संस्करण, 2004, पृष्ठ सं.-18

2. अरुण कमल, जब तुम किसी के करीब आते हो (मैं वो शंख महाशंख), राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2012, पृष्ठ संख्या- 30

3. अरुण कमल, कल्याणी, (अपनी केवल धार), वाणी प्रकाशन, दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2006, पृष्ठ संख्या-79

4. अरुण कमल, बारात दरवाजे लगी, (मैं वो शंख महाशंख), राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2012, पृष्ठ संख्या-48

5. अरुण कमल, वापस, (पुतली में संसार), वाणी प्रकाशन, दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2006, पृष्ठ संख्या-20

6. अरुण कमल, मातृभूमि, (पुतली में संसार), वाणी प्रकाशन, दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2006, पृष्ठ संख्या-43

7. अरुण कमल, जिसने खून होते देखा, (पुतली में संसार), वाणी प्रकाशन, दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2006, पृष्ठ संख्या-27

8. अरुण कमल, ईख का रस, (पुतली में संसार), वाणी प्रकाशन, दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2006, पृष्ठ सं.- 82

9. अरुण कमल, दाना, (पुतली में संसार), वाणी प्रकाशन, दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2006, पृष्ठ संख्या-82

10. अरुण कमल, अभिसार, (नए इलाके में), वाणी प्रकाशन, दिल्ली, चतुर्थ संस्करण, 2010, पृष्ठ संख्या- 37

11. अरुण कमल, एक बार भी बोलती, (सबूत), वाणी प्रकाशन, दिल्ली, नवीनतम संस्करण, 2004, पृष्ठ संख्या-18

12. अरुण कमल, खबर, (अपनी केवल धार), वाणी प्रकाशन, दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2006, पृष्ठ संख्या- 15

13. अरुण कमल, एक मंदिर की गाथा, (नए इलाके में), वाणी प्रकाशन, दिल्ली, चतुर्थ संस्करण, 2010, पृष्ठ संख्या-40

14. अरुण कमल, ईद, (सबूत), वाणी प्रकाशन, दिल्ली, नवीनतम संस्करण, 2004, पृष्ठ संख्या- 56

15. अरुण कमल, स्वप्न, (पुतली में संसार), वाणी प्रकाशन, दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2006, पृष्ठ संख्या- 24

16. अरुण कमल, एक नवजात बच्ची को प्यार, (पुतली में संसार), वाणी प्रकाशन, दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2006, पृष्ठ संख्या-48



– शोधार्थी, हिंदी विभाग, तेजपुर विश्वविद्यालय, तेजपुर, असम

एवं

– असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, तेजपुर विश्वविद्यालय, तेजपुर, असम


❑❑❑

# रश्मिरथी ( प्रथम सर्ग )

## रामधारी सिंह 'दिनकर'

'जय हो' जग में जले जहाँ भी, नमन पुनीत अनल को,
जिस नर में भी बसे, हमारा नमन तेज को, बल को।
किसी वृंत पर खिले विपिन में, पर, नमस्य है फूल,
सुधी खोजते नहीं गुणों का आदि, शक्ति का मूल।
ऊँच-नीच का भेद न माने, वही श्रेष्ठ ज्ञानी है,
दया-धर्म जिसमें हो, सबसे वही पूज्य प्राणी है।
क्षत्रिय वही, भरी हो जिसमें निर्भयता की आग,
सबसे श्रेष्ठ वही ब्राह्मण है, हो जिसमें तप-त्याग।

तेजस्वी सम्मान खोजते नहीं गोत्र बतला के,
पाते हैं जग से प्रशस्ति अपना करतब दिखला के।
हीन मूल की ओर देख जग गलत कहे या ठीक,
वीर खींच कर ही रहते हैं इतिहासों में लीक।

जिसके पिता सूर्य थे, माता कुंती सती कुमारी,
उसका पलना हुआ धार पर बहती हुई पिटारी।
सूत-वंश में पला, चखा भी नहीं जननि का क्षीर,
निकला कर्ण सभी युवकों में तब भी अद्‌भुत वीर।

तन से समरशूर, मन से भावुक, स्वभाव से दानी,
जाति-गोत्र का नहीं, शील का, पौरुष का अभिमानी।
ज्ञान-ध्यान, शस्त्रास्त्र, शास्त्र का कर सम्यक् अभ्यास।
अपने गुण का किया कर्ण ने आप स्वयं सुविकास।
अलग नगर के कोलाहल से, अलग पुरी-पुरजन से,
कठिन साधना में उद्‌योगी लगा हुआ तन-मन से।
निज समाधि में निरत, सदा निज कर्मठता में चूर,
वन्यकुसुम-सा खिला कर्ण जग की आँखों से दूर।

नहीं फूलते कुसुम मात्र राजाओं के उपवन में,
अमित बार खिलते वे पुर से दूर कुंज-कानन में।
समझे कौन रहस्य? प्रकृति का बड़ा अनोखा हाल,
गुदड़ी में रखती चुन-चुन कर बड़े कीमती लाल।

जलद-पटल में छिपा, किंतु रवि कब तक रह सकता है?
युग की अवहेलना शूरमा कब तक सह सकता है?
पाकर समय एक दिन आखिर उठी जवानी जाग,
फूट पड़ी सबके समक्ष पौरुष की पहली आग।

रंग-भूमि में अर्जुन था जब समाँ अनोखा बाँधे,
बढ़ा भीड़-भीतर से सहसा कर्ण शरासन साधे।
कहता हुआ, 'तालियों से क्या रहा गर्व में फूल?
अर्जुन! तेरा सुयश अभी क्षण में होता है धूल।

'तूने जो-जो किया, उसे मैं दिखला सकता हूँ,
चाहे तो कुछ नई कलाएँ भी सिखला सकता हूँ।
आँख खोल कर देख, कर्ण के हाथों का व्यापार,
फूले सस्ता सुयश प्राप्त कर, उन नर को धिक्कार।'

इस प्रकार कह लगा दिखाने कर्ण कलाएँ रण की,
सभा स्तब्ध रह गई, गई रह आँख टँगी जन-जन की।
मंत्र-मुग्ध-सा मौन चतुर्दिक् जन का पारावार,
गूंज रही थी मात्र कर्ण की धन्वा की टंकार।

फिरा कर्ण, त्यों 'साधु-साधु' कह उठे सकल नर-नारी,
राजवंश के नेताओं पर पड़ी विपद् अति भारी।
द्रोण, भीष्म, अर्जुन, सब फीके, सब हो रहे उदास,
एक सुयोधन बढ़ा, बोलते हुए, 'वीर! शाबाश!

द्वंद्व-युद्ध के लिए पार्थ को फिर उसने ललकारा,
अर्जुन को चुप ही रहने का गुरु ने किया इशारा।
कृपाचार्य ने कहा- 'सुनो हे वीर युवक अनजान'
भरत-वंश-अवतंस पांडु की अर्जुन है संतान।

'क्षत्रिय है, यह राजपुत्र है, यों ही नहीं लड़ेगा,
जिस-तिस से हाथापाई में कैसे कूद पड़ेगा?
अर्जुन से लड़ना हो तो मत गहो सभा में मौन,
नाम-धाम कुछ कहो, बताओ कि तुम जाति हो कौन?'

'जाति! हाय री जाति!' कर्ण का हृदय क्षोभ से डोला,
कुपित सूर्य की ओर देख वह वीर क्रोध से बोला
'जाति-जाति रटते, जिनकी पूँजी केवल पाषंड,
मैं क्या जानूँ जाति? जाति हैं ये मेरे भुजदंड।

'ऊपर सिर पर कनक-छत्र, भीतर काले-के-काले,
शरमाते हैं नहीं जगत् में जाति पूछने वाले।
सूत्रपुत्र हूँ मैं, लेकिन थे पिता पार्थ के कौन?
साहस हो तो कहो, ग्लानि से रह जाओ मत मौन।

'मस्तक ऊँचा किए, जाति का नाम लिए चलते हो,
पर अधर्ममय शोषण के बल से सुख में पलते हो।
अधम जातियों से थर-थर काँपते तुम्हारे प्राण,
छल से माँग लिया करते हो अंगूठे का दान।

'पूछो मेरी जाति, शक्ति हो तो, मरे भुजबल से,
रवि-समान दीपित लालट से और कवच-कुंडल से,
पढ़ो उसे जो झलक रहा है मुझमे तेज-प्रकाश,
मेरे रोम-रोम में अंकित है मेरा इतिहास।

'अर्जुन बड़ा वीर क्षत्रिय है, तो आगे वह आवे,
क्षत्रियत्व का तेज जरा मुझको भी तो दिखलावे।
अभी छीन इस राजपुत्र के कर से तीर-कमान,
अपनी महाजाति की दूँगा मैं तुमको पहचान।'

कृपाचार्य ने कहा 'वृथा तुम क्रुद्ध हुए जाते हो,
साधारण-सी बात, उसे भी समझ नहीं पाते हो।
राजपुत्र से लड़े बिना होता हो अगर अकाज,
अर्जित करना तुम्हें चाहिए पहले कोई राज।'

कर्ण हतप्रभ हुआ तनिक, मन-ही-मन कुछ भरमाया।
सह न सका अन्याय, सुयोधन बढ़कर आगे आया।
बोला-'बड़ा पाप है करना, इस प्रकार, अपमान,
उस नर का जो दीप रहा हो सचमुच, सूर्य समान।

'मूल जानना बड़ा कठिन है नदियों का, वीरों का,
धनुष छोड़ कर और गोत्र क्या होता रणधीरों का?
पाते हैं सम्मान तपोबल से भूतल पर शूर,
'जाति-जाति' का शोर मचाते केवल कायर क्रूर।

'किसने देखा नहीं, कर्ण जब निकल भीड़ से आया,
अनायास आतंक एक संपूर्ण सभा पर छाया।
कर्ण भले ही सूत्रपुत्र हो, अथवा श्वपच, चमार,
मलिन, मगर, इसके आगे हैं सारे राजकुमार।

'करना क्या अपमान ठीक है इस अनमोल रतन का,
मानवता की इस विभूति का, धरती के इस धन का।
बिना राज्य यदि नहीं वीरता का इसको अधिकार,
तो मेरी यह खुली घोषणा सुने सकल संसार।

'अंगदेश का मुकुट कर्ण के मस्तक पर धरता हूँ।
एक राज्य इस महावीर के हित अर्पित करता हूँ।
रखा कर्ण के सिर पर उसने अपना मुकुट उतार,
गूंजा रंगभूमि में दुर्योधन का जय-जयकार।

कर्ण चकित रह गया सुयोधन की इस परम कृपा से,
फूट पड़ा मारे कृतज्ञता के भर उसे भुजा से।
दुर्योधन ने हृदय लगा कर कहा-'बंधु! हो शांत,
मेरे इस क्षुद्रोपहार से क्यों होता उद्भ्रांत?

'किया कौन-सा त्याग अनोखा, दिया राज यदि तुझको।
अरे, धन्य हो जाएँ प्राण, तू ग्रहण करे यदि मुझको।'
कर्ण और गल गया, 'हाय, मुझ पर भी इतना स्नेह!
वीर बंधु! हम हुए आज से एक प्राण, दो देह।

'भरी सभा के बीच आज तूने जो मान दिया है,
पहले-पहल मुझे जीवन में जो उत्थान दिया है।
उऋण भला होऊँगा उससे चुका कौन-सा दाम?
कृपा करें दिनमान कि आऊँ तेरे कोई काम।'

घेर खड़े हो जाए कर्ण को मुदित, मुग्ध पुरवासी,
होते ही हैं लोग शूरता-पूजन के अभिलाषी।
चाहे जो भी कहे द्वेष, ईर्ष्या, मिथ्या अभिमान,
जनता निज आराध्य वीर को, पर लेती पहचान।

लगे लोग पूजने कर्ण को कुंकुम और कमल से,
रंग-भूमि भर गई चतुर्दिक् पुलकाकुल कलकल से।
विनयपूर्ण प्रतिवंदन में ज्यों झुका कर्ण सविशेष,
जनता विकल पुकार उठी, 'जय महाराज अंगेश।

'महाराज अंगेश!' तीर-सा लगा हृदय में जा के,
विफल क्रोध में कहा भीम ने और नहीं कुछ पा के।
'हय की झाड़े पूँछ, आज तक रहा यही तो काज,
सूत-पुत्र किस तरह चला पाएगा कोई राज?'

दुर्योधन ने कहा- 'भीम! झूठे बकबक करते हो,
कहलाते धर्मज्ञ, द्वेष का विष मन में धरते हो।
बड़े वंश से क्या होता है, खोटे हों यदि काम?
नर का गुण उज्ज्वल चरित्र है, नहीं वंश-धन-धान।

'सचमुच ही कहा कर्ण ने, तुम्हीं कौन हो, बोलो,
जनमे थे किस तरह? ज्ञात हो, तो रहस्य यह खोलो,
अपना अवगुण नहीं देखता, अजब जगत् का हाल,
निज आँखों से नहीं सूझता, सच है अपना भाल।

कृपाचार्य आ पड़े बीच में, बोले 'छिः! यह क्या है?
तुम लोगों में बची नाम को भी क्या नहीं हया है?
चलो, चलें घर को, देखो; होने को आई शाम,
थके हुए होगे तुम सब, चाहिए, तुम्हें आराम।'

रंग-भूमि से चले सभी पुरवासी मोद मनाते,
कोई कर्ण, पार्थ का कोई-गुण आपस में गाते।
सबसे अलग चले अर्जुन को लिए हुए गुरु द्रोण,
कहते हुए- 'पार्थ! पहुँचा यह राहु नया फिर कौन?

'जनमे नहीं जगत् में अर्जुन! कोई प्रतिबल तेरा,
टँगा रहा है एक इसी पर ध्यान आज तक मेरा।
एकलव्य से लिया अँगूठा, कढ़ी न मुख से आह,
रखा चाहता हूँ निष्कंटक बेटा! तेरी राह।

'मगर आज जो कुछ देखा, उससे धीरज हिलता है,
मुझे कर्ण में चरम वीरता का लक्षण मिलता है।

बढ़ता गया अगर निष्कंटक यह उदभट भट बाल,
अर्जुन! तेरे लिए कभी यह हो सकता है काल!

'सोच रहा हूँ क्या उपाय, मैं इसके साथ करूँगा,

इस प्रचंडतम धूमकेतु का कैसे तेज हरूँगा?
शिष्य बनाऊँगा न कर्ण को, यह निश्चित है बात,
रखना ध्यान विकट प्रतिभट का, पर तू भी हे
तात!'

रंग-भूमि से लिए कर्ण को, कौरव शंख बजाते,
चले झूमते हुए खुशी में गाते, मौज मनाते।
कंचन के युग शैल-शिखर-सम सुगठित, सुघर
सुवर्ण,
गलबाँही दे चले परस्पर दुर्योधन औ' कर्ण।

बड़ी तृप्ति के साथ सूर्य शीतल अस्ताचल पर से,
चूम रहे थे अंग पुत्र का स्निग्ध-सुकोमल कर से।
आज न था प्रिय उन्हें दिवस का समय सिद्ध
अवसान,
विरम गया क्षण एक क्षितिज पर गति को छोड़
विमान।

और हाय, रनिवास चला वापस जब राजभवन
को,
सबके पीछे चली एक विकला मसोसती मन को।
उजड़ गए हो स्वप्न कि जैसे हार गई हो दाँव,
नहीं उठाए भी उठ पाते थे कुंती के पाँव।

❑❑❑

# एक राजनैतिक कहानी

एम. वेंकटेश्वर

जो कुछ हुआ उसमें मेरा क्या दोष था, यह मैं आज तक नहीं जान पाई। जो घटित हुआ उसे रोकना यदि मेरे वश में होता तो शायद मुझे इतना बुरा नहीं लगता। यदि यही संकट मेरे पति पर आ पड़ता तो मैं उनका कितना साथ देती, मैं उन्हें कितनी सांत्वना देती, उन्हें अपने सीने में छुपा लेती। वह शाम मुझे आज भी याद है, वह दृश्य आज भी मेरी आँखों में सजीव हो उठता है। उनका नाम मैं पहली बार अपने ताऊ जी से ही सुनी थी। ताऊ जी ने ही हमारा रिश्ता तय किया था।

'मधुसूदन' नाम मुझे अत्यंत मोहक और पवित्र प्रतीत हुआ था। इस नाम ने मेरे मन में एक उमंग और नया उल्लास भर दिया था। मेरे कानों में यह नाम रह रहकर गूंजता था। उन दिनों मुझे जीवन की सार्थकता इसी नाम में समाहित जान पड़ती थी। मेरे नाम के साथ जुड़ने वाले नाम की कल्पना में मैं पिछले तीन वर्षों से खोई हुई थी। आज मेरी कल्पना साकार हो रही थी। उस क्षण से मुझे मेरा अपना ही घर जिसमें मेरा बचपन बीता और जहाँ मैं पलकर बड़ी हुई थी, अचानक पराया लगाने लगा।

"कुछ ही दिनों में मुझे अपना यह घर छोड़ना होगा", इस विचार को लिए मैं निश्चिंत रहने लगी थी। इधर कुछ समय से माँ मुझे टोकने लगी थी कि -"तुम तुम्हारे घर जाकर अपनी इच्छानुसार कर लेना, यहाँ तो ऐसे ही चलने दो जैसे चल रहा है।"

माँ के उन वचनों को सुनकर मैं सोचती कि "सचमुच अपने घर को मैं अपनी पसंद से सजाऊँगी।" तब से मैं अपने उस घर की कल्पना में डूबी रहने लगी थी। आखिर पता चला कि मेरा घर हैदराबाद में है। यह सुनते ही मैं खुशी से झूम उठी थी। 'हैदराबाद और मधुसूदन' - ये दो नाम मुझे बार-बार छेड़ जाते जिससे मन में गुदगुदी सी होने लगती। मेरे होंठों पर हल्की मुस्कान छा जाती। मुझे इस तरह देख मेरी छोटी बहन मुझे चिढ़ाया करती, मैं और अधिक शर्म से लाल हो जाती।

मधुसूदन से रिश्ते के लिए दहेज में पचास हजार रुपए मेरे घर वाले दे रहे थे। यह मेरी सहेलियों में अच्छा-खासा चर्चा का विषय बन गया। हमारी बी. ए. की परीक्षाएँ समाप्त हो चुकी थीं। मेरी सहेलियों में शादी और दहेज पर बहस शुरू हो गई। उन सब लोगों में मेरी ही शादी सबसे पहले तय हुई थी, इसका मुझे गर्व था। दहेज की बात सुनकर कुछ सहेलियों ने, 'बाप रे बाप, इतना दहेज' कहा। एक लड़की ने दहेज प्रथा के विरोध में लंबा भाषण दे डाला।

विवाह के बाद मैं पति को सुखी रखूँगी, उनका सारा काम करूँगी, उनके बच्चों को जन्म दूँगी। इसलिए उस सहेली के अनुसार इन सारी जिम्मेदारियों के बदले में उन्हें ही दहेज देना चाहिए, मैं क्यों दहेज दूँ?

मुझे लगा कि विवाह की पवित्रता को वह अपनी तीखी आलोचना से भंग कर रही थी। उसकी बातों से मुझे बहुत गुस्सा आया। "उनके लिए काम करूँगी तो

क्या वह मेरे लिए नहीं होगा? और फिर बच्चे होंगे तो क्या वे मेरे नहीं होंगे?" जब मैंने उस वक्र बुद्धि वाली लड़की से यह पूछा तो -"फिर इसके लिए उन्हें पचास हजार रुपए देने की क्या जरूरत, जब तुम दोनों मिलकर सुखी रह सकते हो तो!" - कहकर उत्तर दिया उसने। जैसे वह कोई बड़ा कानूनी दाँवपेंच सिखा रही हो मुझे। उसके कुतर्क का कोई उत्तर नहीं था मेरे पास।

उसे समझाने का जब कोई उपाय मुझे नहीं सूझा तो मैंने उससे कह दिया - ये सब तो विवाह की रस्मों का ही हिस्सा होती हैं, इसलिए इनको निभाना पड़ता है, और फिर जब मुझे और मेरे परिवार वालों को इस पर आपत्ति नहीं है तो उसे क्यों इतनी परेशानी हो रही है?

"शादी के बाद तुम्हें इसका फल भुगतना पड़ेगा" - उसने कहा और चली गई।

देखते ही देखते मेरा ब्याह हो गया। ब्याह पारंपरिक रीति से ही संपन्न हुआ। विवाह मंडप में उनके प्रथम दर्शन से ही मैं उन पर मोहित हो गई। उन क्षणों को मैं कभी भुला नहीं सकती। वे अपनी फोटो से कहीं अधिक सुदर्शन थे। उनका व्यक्तित्व और उनका साहचर्य, सब कुछ मेरे लिए बहुत प्रिय होगा, इसका मुझे विश्वास होने लगा। विवाह के सारे अनुष्ठान मैंने पवित्र मन से संपन्न किए थे। अपने सुहाग की निशानी, मंगलसूत्र को प्रेम से सहेजकर मैंने अपने सीने में छुपाकर रख लिया था। वह मेरे जीवन का सर्वोत्तम क्षण था। मेरा सुहाग ही मेरे संपूर्ण जीवन का अमूल्य वरदान था। निर्मल मन से उनके सुख-दुख में सहभागी बनने का दृढ़ संकल्प मैंने लिया। आगे चलकर, जब किसी बात पर मन दुखी हो जाता तो मुझे विवाह के उस संकल्प की याद हो आती और तब मैं उस दुख को भुलाकर प्रसन्नता से उनके साथ हो लेती। पति-पत्नी के परस्पर संबंधों और पत्नी के कर्तव्यों का बोध मुझे हो चुका था। इससे जुड़े फिल्मी गीत मैं बचपन से गुनगुनाती थी। दांपत्य संबंधों पर आधारित कहानियाँ और उपन्यास मुझे विशेष प्रिय थे। अक्सर इनमें नारी जीवन के आदर्श को आकर्षक शैली में चित्रित किया जाता था। मैं अपनी जीवन बेल को मधुसूदन से लिपटा हुआ पाती और स्वयं को सुरक्षित महसूस कर निश्चिंत हो जाती।

लेकिन यह सब आसानी से नहीं हुआ था। विवाह के दिन मन में जागी आशाओं को साकार रूप देने के लिए मुझे काफी संघर्ष करना पड़ा था। उनकी और मेरी प्रवृत्तियाँ परस्पर विपरीत थीं। वे आरामपसंद थे और स्वच्छता के प्रति लापरवाह। मैं अत्यंत सफाई-पसंद थी। मेरे अत्यधिक स्वच्छता प्रेम से वे कभी-कभी झल्ला जाते थे। लेकिन मैं बहुत जल्द ही उनके अनुकूल बनने के प्रयास में लग गई।

मेरी एक पड़ोसन थी जिसे मेरी तरह साफ-सफाई का जुनून नहीं था किंतु उनके साहब घर में अव्यवस्था से भड़क उठते थे। वह बेचारी पति से डरकर घर को बहुत सजा-सँवारकर रखती थी। हम दोनों जब भी मिलते, हमारी चर्चा का यही विषय होता। हम लोगों ने अपनी आदतों को एक-दूसरे से साझा करने का निश्चय कर लिया।

वैसे उनका व्यवहार मेरे साथ प्रेमपूर्ण ही रहता। कभी-कभी मेरे मन में प्रश्न उठता कि प्रेम का मापदंड क्या है? साथ मिलकर फिल्में देखना और सैर-सपाटे करना ही यदि प्रेम है तो मुझे इसकी कमी नहीं थी। लेकिन कभी अपनी पसंद के फूलों को बालों में सजाकर मनपसंद हिंदी फिल्म दिखाने का मेरा अनुरोध, उनके चेहरे पर सख्ती अवश्य ले आता। ठीक उसी समय मुझे अपना संकल्प याद आ जाता। मेरे सास और ससुर दोनों बहुत भले लोग थे। हमारे विवाह में दहेज के अलावा उन्होंने हमसे और कुछ नहीं लिया था और न ही मुझे किसी चीज के लिए तंग किया, इसलिए उन दिनों हमारा जीवन सुखी था।

उस दिन हमारी शादी की पहली सालगिरह थी। शाम का समय था, आँगन में उनकी प्रतीक्षा में बैठी मैं उनकी कमीज में बटन टाँक रही थी। मन में बीते वर्ष की खट्टी-मीठी यादें बसी हुई थीं। मैं उन्हीं यादों में खोई हुई थी कि इतने में बाहर से कोई शोर सुनाई दिया। सहमते हुए मैं फाटक की ओर दौड़ पड़ी। फाटक पर एक ऑटो को घेरे बहुत सारे लोग दिखाई पड़े। कुछ लोग स्कूटरों पर सवार थे जो ऑटो के साथ आए थे। मैंने देखा कि कोई चार व्यक्ति भीड़ के बीच में से रास्ता बनाते हुए मेरे पति को ऑटो से उतारकर भीतर ला रहे हैं। लड़खड़ाते कदमों से उनको चलते देखकर मेरा कलेजा मुँह को आ गया और मैं फफक कर रो पड़ी।

"कुछ नहीं हुआ, कुछ नहीं हुआ" कहते हुए एक सज्जन मधुसूदन को पलंग पर लिटाने लगे। तब मैंने देखा, उनका दाहिना हाथ खून से लथपथ पट्टी में बंधा था। मुझे चक्कर सा आने लगा। मेरी आँखों के सामने अंधेरा छा गया, कुछ ही देर में मैं निढाल होकर लुढ़क गई। "उन्हें क्या हो गया, क्या मेरे सर्वस्व नहीं बचेंगे?" यह सोचकर मैं रोने लगी। मुझे धीरज बँधाते हुए उन लोगों ने मुझे उस दुर्घटना के बारे में बताया जिसे सुनकर मैं काँप उठी। उनकी फैक्ट्री में वे जिस मशीन पर काम करते थे, उसका कोई नाम बताया उन लोगों ने। ये उस मशीन पर सात साल से काम कर रहे थे। उन्हें इस मशीन की काफी अच्छी जानकारी भी थी। आज उसी मशीन में इनके दाहिने हाथ की सारी उँगलियाँ कटकर अलग हो गईं। उस मशीन ने हाथ को बड़ी बेरहमी से चबा डाला था। उनके साथियों ने उस दुर्घटना को मामूली सा बताया था। उन्हें अस्पताल से ही लाया गया था। उन लोगों ने उनके इलाज का पूरा आश्वासन दिया। मधुसूदन को विश्राम की आवश्यकता थी, साथ ही पौष्टिक आहार तथा दवादारू के लिए उनके साथियों ने मेरे हाथ में कुछ रुपए रख दिए। वे सब मेरे पति के ही फैक्ट्री के यूनियन के कार्यकर्ता थे। इस संकट की घड़ी में इतने सारे लोगों का मेरी मदद के लिए आ पहुँचना केवल ईश्वर की ही कृपा थी। उन लोगों की सांत्वना से अपने आँसुओं को पोंछकर बड़े धैर्य से मैंने मधुसूदन की आँखों में झांक कर देखा। दुख में व्यक्ति कितना अकेला पड़ जाता है। किंतु दुख के स्पर्श से पूर्व ही यदि कोई हमें सहारा दे दे तो उससे मन को जो राहत मिलती है उसका आभास मुझे जीवन में पहली बार हुआ।

फैक्ट्री वालों को विदा कर जब मैं भीतर आई तो मेरे अंदर की पीड़ा फिर मुझे सालने लगी। लेकिन इस बार मैं नहीं रोई। मुझे रोने का अवसर ही मधुसूदन ने नहीं दिया। वे अपने ठूंठनुमा हाथ को देखकर हिचक हिचक कर रोने लगे, मैं अपना सारा धैर्य बटोरकर, अपने आँसुओं को रोककर, उनके आँसू पोंछने लगी। उन्हें नन्हें शिशु की भाँति मैंने अपने सीने से लगा लिया और अपनी सारी ममता उन पर उंडेल दी। उन्हें ढाँढस बँधाती रही। उँगलियों के बिना भी उनका जीवन पूर्ववत चलता रहेगा, इसकी जिम्मेदारी मैंने अपने ऊपर ले ली। वे अपार दुख और पीड़ा के सागर में डूब चुके थे। उन्हें मेरे प्रेम पर भी संदेह होने लगा।

"आपका ऐसा सोचना भी कैसा पागलपन है" - कहकर मैंने उन्हें डांट दिया। "वे चाहे जैसे भी हैं, मेरे अपने हैं, और मेरे प्रेम की ऐसी अनगिनत परीक्षाओं की भी मुझे परवाह नहीं है" - मैंने सोचा।

उनके खून से सने, दवाओं की पट्टी में बंधे हाथ को मैंने धीरे से अपने हाथों में लेकर हल्के से उसे अपने होठों से लगा लिया। उसी क्षण उनको एक बड़ी चिंता ने आ घेरा। हाथ की उँगलियों के बिना उनकी नौकरी का क्या होगा? यदि नौकरी चली गई तो हमारा गुजारा कैसे होगा? फिर दूसरी नौकरी कहाँ मिलेगी? मेरे लाख समझाने पर भी उनकी पीड़ा कम नहीं हुई। अंत में किसी तरह नींद की गोलियाँ देकर उनको सुला पाई और खुद रात भर जागती रही।

दूसरे दिन उनकी दुर्घटना की खबर पाते ही मेरे सास और ससुर दोनों आ पहुँचे। घर में फिर रोना-धोना शुरू हो गया। "क्या इस रोने-धोने का कोई अंत नहीं है? ये लोग क्या उन्हें संभलने ही नहीं देंगे?" मैं यह सोच ही रही थी कि उनकी यूनियन के कार्यकर्ता आ पहुँचे। उन लोगों को देखकर घर वाले थोड़ा सतर्क हो गए।

"नौकरी के बारे में चिंता की कोई बात नहीं है। यदि तुम्हें नौकरी से निकाल दें तो फिर हमारी यूनियन किसलिए है" -कहा उन लोगों ने। नौकरी और मुआवजे की समस्या के समाधान के लिए उन पर छोड़ देने के लिए उन लोगों ने आग्रह किया। उनकी बातों से मेरे पति को काफी मनोबल प्राप्त हुआ। उन्होंने मुझे अपने पास बुलाकर अपने यूनियन के प्रमुख से मेरा परिचय कराया और उनके चरणों में मुझे प्रणाम करने को कहा। मैं घबराई हुई सी उनके चरणों की ओर बढ़ने लगी तो वे पीछे हट गए।

उस नेता ने बताया कि मधुसूदन की नौकरी की रक्षा केवल यूनियन और उसके नेताओं के प्रभाव से नहीं हुई बल्कि श्रमिकों में विकसित नई सोच के फलस्वरूप हुई है। श्रमिक आंदोलन से पहले फैक्ट्री में दुर्घटनाग्रस्त व्यक्ति के लिए लाचार होकर मर जाने के सिवाय और दूसरा कोई रास्ता नहीं था। फैक्ट्री के मालिक कभी उन लोगों की परवाह नहीं करते थे।

इसीलिए श्रमिकों ने संगठित होकर आत्मरक्षा के लिए कुछ नियम बनाए हैं। अत: अब मधुसूदन की समस्या आसानी से हल हो सकती है। फैक्ट्री के कर्मचारियों के लिए आयोजित अनेक कल्याण योजनाओं के संबंध में उन्होंने हमें बताया। मैं उनकी बातों को बहुत ध्यान से सुनती रही। मैं समझ गई कि मेरे पति की स्थिति में पड़े लोगों को अब चिंता करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि अब उनके साथ यूनियन है। इससे हम दोनों बहुत आश्वस्त हुए।

एक महीने में ही उनका हाथ पूरी तरह ठीक हो गया, उनका घाव भर गया। पट्टी खुलवाकर जिस दिन वे आए, उस रात उँगली विहीन हथेली ने मेरे शरीर का स्पर्श किया तो मेरे सारे शरीर में एक विचित्र सी झुरझुरी दौड़ गई। लेकिन मैंने जल्द ही स्वयं पर काबू पा लिया और बिना उँगलियों की उस हथेली को मैं प्रेम से चूमती रही।

यूनियन वालों की कोशिशों से उनको उसी मशीन पर रख लिया गया और उनकी मदद के लिए एक लड़के को भी दिया गया। मुआवजे में दस हजार रुपए भी मिले। दुर्घटना के बाद उसी नौकरी में बहाली की वजह से मुआवजा कम मिला था, लेकिन यूनियन के नेताओं ने हमें उस रकम से संतुष्ट होने को कहा। चार महीनों में हमारा जीवन फिर से पहले जैसा ही चलने लगा।

उन्हीं दिनों मुझमें गर्भवती होने के लक्षण दिखाई दिए। डॉक्टरी जाँच से इसकी पुष्टि हो गई। डॉक्टर की सलाह पर मैं दवाएँ और टॉनिक लेने लगी। पति मेरी खूब देखभाल करने लगे। वे मेरी हर प्रिय वस्तु खरीदकर ला देते और समय पर दूध- फल लेने के लिए जिद करते।

मेरे हिसाब से तीन महीने बीते होंगे, एक शाम जब मैं अपने उलझे बालों को सुलझाते हुए बाहर बैठी थी तो अकस्मात गर्भाशय में शूल सा चुभा और मैं एक असहनीय विस्फोटक पीड़ा से कराह उठी। बहुत देर तक मुझे कुछ न सूझा। मैं उस पीड़ा को सहने की कोशिश कर रही थी लेकिन वह दर्द बढ़ता ही जा रहा था। मेरे भीतर एक उबाल-सा उठ रहा था जो इस पीड़ा को और भी असह्य बना रहा था। भीषण दर्द से मेरे मुख से जोर की चीख निकल पड़ी। मेरी उस चीख को सुनकर पड़ोसन आ पहुँची। उस पड़ोसन को मैंने क्या बताया, कैसे बताया, मुझे कुछ याद नहीं। मैं बेहोश हो चुकी थी। आँख खुली तो अपने को अस्पताल में पाया। मेरे पलंग के चारों ओर घर वाले मौजूद थे। माँ और पिता जी भी आ गए थे। इतने सारे लोगों को देखकर, स्वयं पर कोई अनहोनी के घटित होने की आशंका से भीतर ही भीतर मैं डर गई। मेरे दोनों हाथ बंधे हुए थे। एक हाथ से सेलाइन और दूसरे हाथ से खून चढ़ाया जा रहा था। पेट पर पट्टियाँ बंधी हुई थी। भीतर कहीं परतों के नीचे दर्द अभी भी शेष रह गया था। जब मैं पूरी तरह होश में आ गई तो माँ ने मुझे धीरे से बताया कि मेरे भीतर पलने वाला पिंड गर्भाशय से हटकर साथ के ट्यूब में बढ़ने लगा था, जो अचानक फट गया। उसके फटने से भीतर खून जमा हो गया था जिसे साफ करने के लिए छह घंटों का ऑपरेशन करना पड़ा था। इस ऑपरेशन के कारण मैं अब गर्भ धारण नहीं कर सकती थी। मैं अब कभी माँ नहीं बन सकती थी। इस भयानक सत्य का उद्घाटन मेरी माँ ने ही किया।

"कुछ भी हो, कम से कम तुम्हारी जान बच गई"- कहकर माँ ने एक लंबी सांस ली। माँ की बातें मुझे कुछ विचित्र सी जान पड़ीं। एक पल के लिए मैं अपने अस्तित्व को पहचानने का प्रयत्न करने लगी। भीषण झंझावात से ध्वस्त इमारत की भाँति मैं ढह गई। मधुसूदन को देखते ही मेरे भीतर का दुख, भावनाओं के आवेग से उमड़ पड़ा। मैं जोर से रो पड़ी।

"रोती क्यों हो? रोने से अपनी तकदीर नहीं बदलेगी" बहुत रुखाई से उन्होंने कहा।

मैं तो समझी थी कि वे मुझे इस हाल में देखकर घबरा जाएँगे। मेरे सिर को अपनी गोद में लेकर सहलाएँगे, मेरे आँसू पोंछकर मुझे सांत्वना देंगे। लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ। बल्कि इसके विपरीत उनकी नजरों में उपेक्षा और आक्रोश के भाव स्पष्ट झलकने लगे थे जिसे भाँपकर मैं घबरा गई। इसका कारण मैं नहीं जान पाई।

तुम अब बच्चों को जन्म नहीं दे सकोगी इसीलिए तुम्हारी सास भी तुमसे नाराज है दूसरे दिन माँ ने मुझसे कहा तो मुझे पति की आँखों में व्याप्त आक्रोश का अर्थ समझा में आ गया।

"माँ, अब मैं क्या करूँ?" मैंने पूछा।

"तुम क्या कर सकती हो। तुम्हारे भाग में यही लिखा था। शायद संतान का योग तुम्हें नहीं है। अब वे लोग जो भी करें हमें सहना तो पड़ेगा ही।" कहकर माँ दुख से रो पड़ी।

भय से मेरी आँखें पथरा गई थीं। मेरे आँसू सूख गए थे। उस हालत में मुझे अपनी बेबसी पर खीझ होने लगी। मेरे दुख का सहभागी कोई नहीं था। मुझसे संतान प्राप्ति नहीं हो सकती, इस सच्चाई ने दैत्याकार रूप धारण कर लिया था, जो सबकी चिंता का विषय बन गया। उनमें से किसी को मुझसे लेश मात्र भी सहानुभूति नहीं थी। मेरी माँ की भी चिंता उस अजन्मे शिशु के प्रति ही थी। मेरी मानसिकता टूटकर बिखर रही थी। मेरी इस दारुण मानसिक और शारीरिक यंत्रणा से किसी को सरोकार नहीं था।

अस्पताल की नर्स ने जब यह कहकर थोड़ी सी सहानुभूति जताई कि "कितनी बड़ी जानलेवा विपत्ति टल गई"- तो पास ही खड़ी मेरी सास ने तपाक से कहा - ऐसा भी जीना किस काम का? उनकी आँखों में नफरत के भाव स्पष्ट झलक रहे थे।

मुझे अपनी स्थिति पर दुख तो हो रहा था लेकिन अपने दुख से अधिक मधुसूदन के संबंध में मैं अधिक चिंतित थी। उन्हें मुझसे संतान की प्राप्ति नहीं होगी जिससे उनका वंश आगे नहीं बढ़ेगा। उनकी संपत्ति का कोई वारिस नहीं होगा। जाहिर था कि मैं ही इन स्थितियों के लिए दोषी हूँ, सब यही सोचेंगे। इधर मेरा इलाज जारी था परंतु सब कुछ यंत्रवत चल रहा था। मुझे मात्र एक अनुपयोगी वस्तु की भाँति ही देखा जा रहा था। घर की बेकार, पुरानी, सिलाई-मशीन की तरह मैं भी एक कोने में पड़ी थी, लोग मुझसे ऊब चुके थे। अस्पताल से मेरे घर आते ही माँ और पिता जी चले गए। फिलहाल मुझे साथ ले जाने की इच्छा जाहिर नहीं की उन्होंने। मुझे माँ-पिता जी के साथ नहीं जाते देख, मेरी सास के तेवर चढ़ गए। पति का व्यवहार भी बदला हुआ नजर आने लगा। मेरे प्रति उनमें उपेक्षा के भाव स्पष्ट उभरने लगे थे। मैं सब कुछ सह सकती थी, किंतु उनके द्वारा तिरस्कार नहीं सह सकती थी। मेरे मन में अनेक प्रश्न उठने लगे किंतु उनमें से किसी का उत्तर मुझे नहीं मिला। वे कैसे यह सोच सकते हैं कि मैं बिलकुल व्यर्थ हूँ? क्या उन्होंने मुझसे केवल बच्चे पैदा करने के लिए ही विवाह किया था। जीवन में प्रेम और साहचर्य का क्या कोई स्थान नहीं? क्या हमारा जीवन पहले जैसा अनुरागमय नहीं हो सकता? क्या उन्हें मुझसे पहले जैसा लगाव नहीं रहा? क्या संसार में बिना संतान के स्त्रियाँ नहीं हैं? क्या उनका दांपत्य जीवन सुखी नहीं है? इन सब बातों पर जब मैं सोचती हूँ तो मुझे रुक्मिणी मौसी की याद आ जाती है। चालीस वर्षों की आयु तक संतान प्राप्ति के सारे उपायों में विफल होकर, व्रत उपवास आदि प्रयत्नों से हारकर उन्होंने अपने भाई के बेटे को गोद ले लिया था।

"कुछ भी हो संतान बिना नारी जीवन सार्थक नहीं होता"- माँ अक्सर कहा करती। तो क्या विवाह का लक्ष्य केवल बच्चे पैदा करना ही है? नारी क्या इस संसार में केवल संतानोत्पत्ति के लिए ही जन्म लेती है? क्या नारी जीवन की सार्थकता पुरुषों के लिए बच्चे पैदा करने में ही है।

"नारी क्या केवल एक एम्ब्रियो और दो ओवरीज मात्र ही है" - इस पर मैं जितना सोचती हूँ मुझे संसार की कोई स्त्री संतुष्ट नहीं दिखाई देती। दहेज देकर मैंने तो विवाह कर लिया। लेकिन मेरी कई सहेलियाँ दहेज न देने की स्थिति में अभी तक कुंवारी बैठी हैं, लोग उनके बारे में तरह-तरह की बातें करते हैं। उनको इस स्थिति का सामना करने के लिए बहुत संघर्ष करना पड़ता है। दहेज से असंतुष्ट ससुराल के अत्याचारों से छुटकारा पाने के लिए मेरी सहेलियाँ, निर्मला और सरोज ने आत्महत्या का मार्ग चुन लिया। कमला को तो उसी के पति ने मार डाला। दोनों बार कन्याओं को जन्म देने के अपराध में मेरी पड़ोसन पारिवारिक हिंसा की शिकार हो गई।

आज तक मैं स्त्रियों के प्रति समाज के ऐसे शोषक व्यवहार से कैसे अनजान थी? समाज में चारों ओर नारी का करुण आर्तनाद व्याप्त है लेकिन बाहर यह दिखाई नहीं देता, क्योंकि नारी सहिष्णुता की साक्षात मूर्ति है।

मुझे स्वयं पर गुस्सा आने लगा। अपने अनुरागमय दांपत्य की कल्पना मुझे मूर्खतापूर्ण लगी। मेरी तरह ही अनेक मूर्ख कुलवधुएँ अपने स्वप्नलोक में खोई रहती हैं। हम स्त्रियाँ दुर्लभ प्रेम की मृग मरीचिका के पीछे

दौड़ते हुए अपना अमूल्य जीवन नष्ट कर रही हैं। मेरे मन में विचारों का तफूान उठ रहा था।

आखिर एक दिन मेरी सास ने अपने घिनौने इरादों से मुझ पर हमला कर ही दिया। उन्होंने कहा कि मेरे कारण उनके पुत्र का जीवन अशांत और अंधकारमय हो गया है। वह बेचारा सूखकर कांटा हुआ जा रहा है। चिंता उसे निगल रही है। जो कि सरासर गलत था। इधर वे मुझसे उखड़े-उखड़े से रहने लगे थे, यह सच था, किंतु इसके अलावा उनका जीवन सामान्य गति से ही चल रहा था। फैक्ट्री में उनको पहले से कम काम दिया जा रहा था। उनके स्वास्थ्य में काफी सुधार हो गया था। चिंता में तो मैं घुली जा रही थी। आस-पड़ोस की औरतों को अपने संग बैठाकर मुझे सुनाने के लिए जब मेरी सास मेरे पति के प्रति चिंता व्यक्त करने लगी तो मुझे उनके इरादों का पता चला। उन्होंने एक दिन अपने मन की बात मेरे मुँह पर ही कह डाली।

माता अपने पुत्र का दूसरा ब्याह रचाना चाहती थी।

सुनकर मैं काँप उठी। तिरस्कृत और अपमानित होकर भी मैं किसी तरह अपने ही घर में दिन बिता रही थी। अब वे लोग मुझे मेरे ही घर से बाहर कर, उनके लिए दूसरी स्त्री लाना चाहते थे।

जब मैंने इस बारे में अपने पति से पूछा तो - "माँ पोतों को गोद में खिलाने के लिए बेचैन है, मैं क्या कर सकता हूँ"- कहा उन्होंने। उनकी मुख मुद्रा को देखकर मुझे पता चल गया कि अपनी माँ को भड़काने वाले वे ही थे।

"तो आपने क्या सोचा है?" -मैंने पूछा।

मुझे तलाक देकर दूसरा विवाह करने की अपनी योजना बहुत शांत भाव से उन्होंने बताई।

हमारी बातचीत बहुत औपचारिक तौर पर शुरू हुई थी लेकिन अंत उसका मेरे पति की धमकी से हुआ। उनके कहने का आशय यही था कि बिना किसी विरोध के मैं उन्हें तलाक दे दूँ, और यदि ऐसा नहीं हुआ तो मुझसे अपना पिंड छुड़ाने के कई उपाय उनके पास हैं। उनमें से एक दो का जिक्र उन्होंने किया तो मेरे रोंगटे खड़े हो गए। तत्काल मेरे माता-पिता को बुलवाया गया और मुझे उनके सुपुर्द कर दिया गया। वे चुपचाप हाथ बांधे उनके सामने खड़े रहे। मेरी सास ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि उसी क्षण मुझे घर छोड़कर निकल जाना होगा। वह घर अब मेरा नहीं। उनके लिए जो स्त्री बच्चे पैदा करेगी, यह घर उसी का होगा। विवाह के पवित्र मंत्रों का अर्थ केवल पति के वंश की वृद्धि ही है। स्थिति स्पष्ट हो चुकी थी। मुझे उनके घर में उनके लिए बच्चे पैदा करके, पाल-पोसकर बड़ा करने की नौकरी दी गई थी। इस नौकरी को मैंने पचास हजार रुपयों की रिश्वत देकर खरीदा था। आज मैं उस कार्य के योग्य नहीं रह गई इस कारण मुझे इस नौकरी से बर्खास्त किया जा रहा है। साथ ही किसी योग्य व्यक्ति को उसी काम पर रखा जाने वाला था। शायद विवाह का यही अर्थ है। लोग इस अर्थ को छिपाकर विवाह का अर्थ प्रेम, अनुराग, दांपत्य आदि खोखले शब्दों में ढूँढने का प्रयास करते हैं। इसे खुलकर नौकरी पेशा कहने से शायद लोग इसलिए कतराते हैं कि नौकरी में अधिकारों की मांग होगी, बोनस का प्रावधान होता है। दांपत्य, पतिव्रत्य - जैसे शब्दों के प्रति तो स्त्रियाँ अपना सर्वस्व समर्पित करने को तैयार हो जाती हैं और प्रतिदान की आकांक्षा के बिना ही अपने भाग्य को स्वीकार कर लेती हैं। पुरुष के प्रेम की पतली आंच भी स्त्री को पिघला कर रख देती है और वे पुरुष की आराधना करने लगती हैं। 'लड़ाकू' कहलाने के भय से वे अपनी आवश्यकताओं को जाहिर ही नहीं करतीं। स्त्री-पुरुष के इस संबंध को विवाह कहने में जब इतने लाभ हों तो फिर इसे नौकरी पेशा कौन मानेगा? मैं खुलकर इस शोषण का विरोध करना चाहती थी, किंतु तब मैं अपने अकेलेपन से त्रस्त और भयभीत थी। मेरी इस संकट की घड़ी में मुझे आश्रय देने वाला मेरा अपना कोई नहीं था। मैं नितांत अकेली थी। मेरे साथ की स्त्रियों को भी मेरे दुख का आभास नहीं हो रहा था। यह मुझे चौंका रहा था।

उस दिन मधुसूदन के दुर्घटनाग्रस्त होने पर यूनियन के कितने सारे लोग आ पहुँचे थे। उन सबने उन्हें कितना धीरज बँधाया था। मालिकों से इलाज का पैसा लाकर दिया था। सबने साथ होने का अहसास दिलाया था। सारे लोग एकजुट होकर उनकी नौकरी की बहाली के लिए लड़े थे। मुआवजे की रकम के लिए मालिकों के कई चक्कर लगाए थे। उन लोगों ने मुझे हिम्मत दी थी। मेरे पति की पीड़ा और दुख को उनके सहयोगियों ने मिलकर बाँट लिया था। आज वे सब कहाँ गए। पति का वह हाथ, बेकार होकर भी कितनी रियायतें प्राप्त

कर चुका था। उसे मित्रों का कितना प्यार दुलार मिला था। उस हाथ की दुर्घटना के साथ कितने संघर्ष और आंदोलन जुड़े थे। जब मैं अपने बच्चे को जन्म देने की प्रक्रिया में दुर्भाग्यवश दुर्घटना का शिकार हुई तो मुझे अपमानित कर पति के घर से निकाल दिया गया। मेरी दुर्घटना के दोषी शायद पति ही हैं। उनके कण के समागम से ही मेरे शरीर का वह अंग क्षतिग्रस्त हुआ था, परिणामस्वरूप मेरे शरीर का एक हिस्सा काटकर अलग कर दिया गया और मेरे माथे पर 'बांझ' शब्द अंकित कर दिया गया। यह कैसा न्याय है? मेरी भी दुर्घटना उत्पादन की प्रक्रिया में ही हुई थी। मैं किसी इलाज करने वाले व्यक्ति के उत्पादन कार्य में ही जख्मी हुई हूँ तो मुझे इस समाज से कोई रियायत नहीं मिली। मुझे किसी की करुणा या सहानुभूति नहीं मिली। मुझे किसी का सहयोग प्राप्त नहीं हुआ बल्कि मुझे ही कार्य से बर्खास्त कर दिया गया। मेरी किसी ने थोड़ी भी मदद नहीं की। आखिर यह असमानता क्यों? मेरे जीवन में एकाकीपन का षडयंत्र किसने रचा? नारी माता, पत्नी, पुत्री, सास, बहू आदि अनेकों वर्गों में बंट गई है। किसने इनको इतने वर्गों में बांटा। दांपत्य और मातृत्व का लालच देकर स्त्रियों को क्यों छला जा रहा है? समाज में व्याप्त इस खुले शर्मनाक व्यापार का पदार्फाश करना होगा। नारी की खंडित मानसिकता का उपचार ढूँढना होगा। मुझ जैसी अभागन स्त्रियों का पता लगाना होगा। यही मेरे शेष जीवन का लक्ष्य है। मेरे जीवन की सार्थकता सुहाग में नहीं बल्कि शोषित नारियों को बल प्रदान करने में ही है।

– फ्लैट नं. 310, कंचरेला टॉवर्स, मुशीराबाद, हैदराबाद - 500020

❑❑❑

# पांडे सदन

इंदिरा दाँगी

टाउन हॉल चौराहे के मोड़ पर एक पुराना मकान है। दुतल्ला, पर्याप्त बड़ा, पुराने छज्जेदार, निचली मंजिल पर दुकानें। यह कस्बे के मुख्य बाजार का मुख्य चौराहा है जिसके सामने यही एक मकान मुख्यत: है। इसकी मुख्यता की एक अतिरिक्त वजह है, इसमें रह रही सुंदर लड़कियों की संख्या।

गृहस्वामी आचार्य जी यानी यहाँ के शासकीय डिग्री कॉलेज के पुराने सेवानिवृत्त प्राचार्य जी की चार बेटियाँ हुईं, उनकी हद खूबसूरत लेकिन बेहद कड़वी जुबान वाली बीवी से। उन लड़कियों का बढ़ना-पढ़ना सब जैसे, मकान के दुतरफा खुले छज्जों पर ही हुआ। फिर वे ब्याह-ब्याहकर अपनी ससुरालों को भी चली गईं और कब सर्दियों-गर्मियों की छुट्टियों में साल-दर-साल वे लौटती हैं अपनी युवा होती बेटियों के साथ, इस मकान के छज्जों की रौनक में इजाफा करने। यहाँ के रहवासियों में आचार्य जी की संझली बेटी कनक और उसकी दो तरुण बेटियाँ हैं- महक और चहक; और अब तक आचार्य जी भी थे। वे भले ही पचहत्तर बरस के लगभग हो गए थे; पर बाहर बैठक में छज्जों की खिड़कियाँ खोलकर सोते थे, अपनी पचफैरा बंदूक में कारतूस डाले, हर आहट पर ऊँची, दबंग, मर्दाना आवाज़ लगाने वाले- कौन है? .... एक बूढ़ा बब्बर अब तक इस दहलीज़ का रखवाला था।

कल आचार्य जी की तेरहवीं थी। भव्य आयोजन रहा। एक तरह से कस्बे का दिल ही मृत्युभोज में चला आया था। सैकड़ों आदमियों का भोज था। उत्तर प्रदेश के किसी गरीब अंचल के एक उच्च शिक्षित बेरोजगार सूर्यप्रकाश पांडे अब से पचास बरस पहले यहाँ मध्य प्रदेश के इस गँवई कस्बे में नए खुले सरकारी महाविद्यालय में सहायक प्राध्यापक की नौकरी पा गए थे। आगे पूरा जीवन उनका (भले ही आत्मा के भीतर उत्तर प्रदेश कसकता रहा) यहीं बीता। एक आदर्श भारतीय शिक्षक की कठिन, नीरस और भीतरी गरीबीदार मगर गरिमामयी सीमारेखाओं का उन्होंने जिस तरह मान रखा जीवन भर, उसी तपस्या सरीखे जीवन का फल था कि उनकी मौत पर लगभग पूरा कस्बा रो पड़ा।

पिछले तेरह दिनों से शोक व्यक्त करने आने वालों का तांता लगा है; क्योंकि घर में कोई पुरुष शेष नहीं रहा, आने वाले घर की सुंदर स्त्री के पास कुछ ज़्यादा ही देर बैठ कर जाते रहे हैं। तेरह दिन-रातों की व्यवस्था सम्हालती, थकावट से चकनाचूर हो चुकी है कनक। अब भी लेकिन, सुर्ख आँखों और लस्त चेहरे से भंडार-कमरे में तेरहवीं भोज से बचे सामान को हिसाबी नजर से रखती जा रही है। आँखों में रह-रहकर अंधेरा छाता है, जुबान सूख-सूख जाती है, नींद से चेतना दब-दब जा रही है, फिर भी वो लगी है पस्त हाथों से लगातार काम करने। दाऊ की याद आई, आज होते तो अपनी दबंग-आशीर्वादी आवाज में आदेश-सा दे रहे होते, "कनको! दिन सीरा हो जाने दो, तब धर-उठा लेना अपनी ये माया।.... नहीं मानती हो तो जाओ पहले शिकंजी बनाकर पी लो।"

कनक की आँखों से झर-झर आँसू झरते हैं। पिता होते तो खुद ही चहक को आवाज दे देते,

"मौड़ी, चल अपनी मम्मी के लिए शिकंजी तो बना।"

बैठक की तरफ नजर उठती है; नहीं दाऊ कहीं से नहीं पुकार रहे! कनक ने अपने सफेद पल्लू से आँखें पोछी और फिर सामान का हिसाब जमाने लगी।

"मम्मी, शिंकजी!"

चहक भंडार-कमरे के दरवाजे पर बड़े ट्रे में शिकंजी के आधा दर्जन गिलास लिए खड़ी है।

"पहले सब को दे आतीं!"

"सब तो दिन भर कूलर में पसरी है, आप ही इस गर्मी में अकेले जान देती हैं।"

"ऐसी बात नहीं कहते बेटा जो कलह का द्वार खोले।"

"एक बार कलह हो तो सब साफ तो हो। ये क्या कि कंजाए कोयलों की तरह वे सब सुलग रही हैं और हम उन्हें अपनी हथलियों पर रखे हुए हैं।"

जबकि भंडार-कमरे के द्वार पर चहक अपनी माँ को यह कह रही है, आँगन पार बैठकखाने के तख्त पर बैठी तीनों मौसियाँ इसी ओर देखती हैं। तीनों के दिलों में भी चहक वाली ही बात है- एक बार खूब कलह हो तो सब साफ हो! तीनों बहनें हर तरह की लड़ाई के लिए भरी बैठी हैं; लेकिन तीनों में से कोई भी शुरुआत करने का इल्जाम अपने सिर नहीं लेना चाहती। दो बड़ी बहनें, बूढ़ी रामकुमारी और प्रौढ़ा तृप्ता दो दिन पहले ही अपने घरों से आई हैं और सबसे छोटी रितु कल सुबह ही यानी ऐन तरहवीं के दिन अपने आठ साल के बेटे चिंटू के साथ रेलवे स्टेशन पर उतरी थी। महक अपने छोटे स्कूटर से उसे लेने स्टेशन गई थी।

तीनों ही बहनें पिता की तेरहवीं के बहाने असल में इकट्ठी हुई इस मकान को बेचने। बड़ी और मंझली को उनके पतियों ने हर पहलू समझा-बुझा कर भेजा है कि जिस भी दाम बिके, मकान बेच-बाच कर अपने रुपए लेती आना। रितु को किसी से कुछ समझने की जरूरत कभी नहीं है, वो खुद ही बहुत खेली-खाई हैं दुनियादारी में। अब पांडे सदन में इस समय हालात यह है। कि ये तीनों होठों पर बातें तैयार धरे बैठी हैं लेकिन चुप हैं। आखिर अपनी विधवा बहन को घर से बेघर कर देना कोई हँसी-ठट्ठा तो है नहीं। बिरादरी में थू-थू तो होनी ही है क्योंकि मामले में एक पेंच ये भी है कि दाऊ ने अपने जीते जी ही इन तीनों बेटियों को उनके महानगरों में उनकी पसंद के प्लॉट भी दिलवा दिए थे। तीनों ही के पतियों के अनुमानों में इस मकान की कीमत साठ नहीं तो पचपन-पचास लाख तो जरूर ही ठहरती है किसी भी मरी-गिरी हालत में, और जो दहेज या प्लॉट उन्हें मिले थे वे तो इस मकान की वर्तमान कीमत के आगे दिठौना भर थे।

चहक ने शिकंजी के गिलास भरे ट्रे को साधे-साधे बैठकखाने में पहला कदम रखा ही था कि बिजली गुल हो गई।

"लेओ, अब गई दिन भर के लिए!" बड़ी मौसी रामकुमारी ने तख़्त पर लेटे-लेटे कहा। जब तक बंद हुए कूलर की ठंडक बाकी है, वे लेटी ही रहने वाली हैं।

"दिन भर के लिए नहीं बड़ी मौसी, बिजली कटौती दोपहर के चार घंटों के लिए होती है बस।"

चहक ट्रे लकड़ी की पुरानी मेज़ पर रखती है जिसकी बद-हालत ढाँपने के लिए उस पर सदा मेजपोश बिछा रहता है।

"हम तो राजधानी में रहते हैं, मिनिट भर को लाईट नहीं जाती वहाँ, हमारा ए. सी. दोपहर में एक पल को बंद नहीं होता। रात भर चलता है सो अलग। यहाँ तो जीवन नरक है।" हाथ पंखा झलती मंझली मौसी कहती हैं। ये हाथ के पंखे महक और चहक ने घर में ही बनाए हैं, पुराने कपड़ों और ऊन से।

"स्वर्ग सब राजधानियाँ अपने नाम चढ़ा लेती हैं और कस्बों-देहातों को नरक में छोड़ देती हैं।"

"भले कस्बे में हो, लेकिन ये घर पहले कभी नरक न था; जो बना रखा है सो तुम माँ-बेटियों ने ही वर्ना हमारी अम्मा के जमाने में तो घर में जेनरेटर होता था। खास उनकी जिद पर दाऊ ने दिल्ली से मंगवाया था। तब पूरे बुंदेलखंड में किसी के यहाँ जेनरेटर रहा होगा सिवाय सेठों और राजे-रजवाड़ों के। कहाँ गया वो जेनरेटर?"

"नाना जी का सब सामान अब म्यूजियम में रखने लायक हो गया है।" -कहती हुई चहक आँगन की ओर चली गई।

"सुन रही हो जिया, इस लड़की की बातें?"

लेकिन मंझली मौसी की राय में राय मिलाने के बजाय, तख़्त पर अधलेटी बड़ी मौसी ने ये कहा, "शिकंजी का गिलास तो उठाकर दे जाती नासपीटी।"

गिलास उठाकर एक-दो घूंटों में ही उन्होंने पूरा खाली कर दिया। मेज पर रखे थाली भरे सुपारी के गट्टे उठा लिए जो थोड़ी ही देर पहले उन्होंने भंडार-कमरे से मंगवाए थे कनक को आवाज देकर। तेरहवीं के लिए बहुत सुपारी आई थी। शायद बड़ी मौसी ये सुपारी ले जाएँगी, पीतल के इस प्राचीन डब्बे के साथ जिसमें वो सुपारी कतर-कतर कर रखने लगी हैं। ये कलात्मक डब्बा अम्मा के दहेज में उनके मायके से आया था और अब तक इसी बैठकखाने में इसी मेज पर रहा है।... लेकिन आज यह भी दाँव पर है, ठीक इस घर की तरह।

चहक हाथ में पानी से भरी बाल्टी और लोटा लेकर बैठक में लौटती है और खिडकियों पर परदों सी डली बाँस की चिक को पानी से तर करने लगती है। सबसे छोटी मौसी रितु का लड़का चिंटू शिकंजी का गिलास उठाने में लुढ़का देता है।

"चहक, ये सब साफ कर दे और चिंटू के हाथ-पैर धुलाकर इसके कपड़े बदल ला।"

चहक कुछ नहीं कहती। चुपचाप चिक पर लोटे से पानी डालती रहती है। अगले ही पल में रितु मौसी का चेहरा तमतमा जाता है,

"कैसी ढीठ लड़की है!"

और अपने लड़के का हाथ पकड़कर उसे आँगन की तरफ खींचती ले जाती है,

"चल! एक मिनिट को चैन नहीं इस कमीने के मारे!"

चहक चुपचाप अपना काम करती है। बड़ी मौसी डब्बे में से, दाऊ की शेष छूटी तंबाखू को उठा-उठाकर हथेली पर रगड़-रगड़कर खैनी बनाने के बाद मंझली से साझा करती हैं। महक हाथ में दूसरा मेजपोश और पोछे की बाल्टी लिए कमरे में आती है। मेजपोश बदलने के बाद फर्श पोंछती हुई, चहक से कहती है,

"क्यों तुमने छोटी मौसी को नाराज़ कर दिया?"

पसीना पोंछती कनक भी आ बैठती है और हाथ का पंखा झलने लगती है। बड़ी मौसी पूछती है,

"खाने में कित्ती देर है?"

"बस मौसी, बर्तन माँजकर रोटियाँ ही सेंकने जाऊँगी।"

"आय हाय, तुम तीनों माँ-बेटियाँ करती क्या रहती हो दिन भर? तुम लोगों का काम न सिमटता है ना सैलाता है? दिन के बारह बज गए, सबेरे का पोहा खाए हैं, अब तक खाना नहीं बना। अभी बर्तन मँजेगे फिर रोटियाँ पड़ेंगी तब थालियाँ लगेंगी! कै बजे परोसोगी फिर हमें? सोचती हो कि रोटी ही न दो, अपने आप भाग जाएँगी तीनों मौसियाँ।

"काम सैलाएगा कैसे इनका जिया? इन्हें ये दुकानें-वो छिपाने से फुर्सत मिले तब तो? दाऊ की उतिया-पुतिया नजर भर जाँच न लें हम; हर साल यही करतूतें तो देख जाते हैं! कौन नई बात है?"

"दुकाया-छिपाया कुछ नहीं है यहाँ किसी ने; जो है खुले में है।" - कनक ने भरसक सहज आवाज में कहा।

"क्या है खुले में?" रितु भीतर से लौटती कहती है, "वॉशवेशिन का नल टूटा है तो तीन बरस से टूटा ही है। मकान नहीं पुता तो पाँच बरस से पुता ही नहीं है। रसोई की टाईल्स झड़ रही हैं। गद्दे-तकिए-चादरें फटकर चीथड़ों में बदल रहे हैं।"

"इल्जाम किसे देती हो रितु; तुमसे क्या छिपा है! दाऊ की पेंशन से घर चलता रहा है अब तक। और जो पैसा था उनका बैंक में उससे ये तेरहवीं हो गई जैसी कि उनकी आखिरी इच्छा थी।"

मंझली बहन सबसे आगे आ गई,

"दाऊ की पेंशन कम नहीं थी तुम लोगों के खर्च के हिसाब से बहुत ही थी। ये जो सोने की चेन तुमने गले में पहनी है सो तुम्हारे पति के रहते तो कभी न पहन पाई होगी तुम! अब ये भी बता दो कि अम्मा के जेवर कहाँ है?"

"नानी कितने सालों बीमार रहीं, आखिरी दो बरस तो बिस्तर पर ही सब कुछ होता था उनका। हमारी

मम्मी ने उन्हें बिना उनसे घिन किए, उन्हें किसी छोटे बच्चे की तरह सम्हाला, तिस पर भी मरते समय तक उनकी कड़वी जुबान बंद नहीं हुई थी। हमारी मम्मी ने और हम सब ने कितना सहा उनको और कितनी सेवा की उनकी, तब न आईं आप लोग; आईं थीं तो उनकी तेरहवीं पर सो भी दिन-दो दिन की फुर्सत निकालकर जैसे अभी आईं हैं, नाना जी का दुख मनाने नहीं, हमें लूटने।"

माँ रोकती है,

"चहक, चुप रहो। मौसियों से इस तरह बात करते तुम्हें शर्म नहीं आती।"

"लड़कियों को खूब पट्टी पढ़ा रखी है। ये अच्छा है, माँ चुप रहे, बेटियाँ हमें नंगा कर दें।" - रितु खूब तेज चीखती है।

बड़ी मौसी टोकती है,

"इतनी तेज न बोलो रितु! बाहर बाज़ार है। लोग कहेंगे आचार्य जी की बेटियाँ संपत्ति के लिए लड़ती हैं।"

सब पल भर को चुप हो जाती हैं। कनक खिड़की का चिक हटाकर बाहर की गर्म हवा को भीतर आने देती है।

"जिया, अम्मा के जेवर सब उनकी बीमारी में ही बिक गए। उनके इलाज के लिए दाऊ ने जो लोन लिया था अपने पेंशन खाते में, सो पटाने के लिए नीचे के तीनों दुकानदारों से एक-एक साल का किराया एडवांस लिया था, अभी चार महीने और कोई दुकानदार किराया न देगा। बस, दाऊ कोई ऋण नहीं छोड़ गए, यही दया है ईश्वर की वर्ना न कोई जेवर बाकी है और न बैंक में रुपया ही बचा है।"

कनक उठ जाती है,

"चलो चहक, बर्तन मँजवा लूँ तुम्हारे साथ। महक तुम रोटियाँ सेको।"

कनक अपनी सफेद सूती साड़ी से चेहरे का पसीना पोंछती रसोई की ओर चली जाती हैं। पीछे-पीछे चहक-महक भी चली जाती हैं। अब तीनों मौसियाँ सनाका खाई हुई-सी एक-दूसरे के सामने बैठी हैं। रितु का लड़का फिर नीचे की दुकान से चिप्स लाने को ठुनकने लगा। रितु उसे तमाचा दिखा ही रही थी कि बड़ी मौसी ने ब्लाउज़ में से छोटा पर्स निकालकर दस का नोट उसे पकड़ा दिया, वो सीढ़ियों पर उतरता भाग गया। तीनों बहनें अब चुपचाप बैठी हैं, चेहरों पर पसीना है, माथे पर शिकन।

बड़ी मौसी अपनी प्रशांत आवाज में चर्चा को नए सिरे से शुरू करती हैं,

"इनका रिटायरमेंट भी अब पास है। दो लड़कियों की शादियों में ही जीवन की सब जमा-जोड़ लुट गई। दोनों ही दामाद सरकारी नौकरी वाले देखे; हमारी तो कमर ही टूट गई दहेज जुटाते-जुटाते। सनाढ्य ब्राह्मणों में तो वैसे भी दामों पर ही मिलता है लड़का चाहे जिस घर का हो, फिर सरकारी नौकरी वाला दामाद पाना हो तब तो समझ लो खाल छिल जाती है लड़की वालों की, दहेज के कोड़े खाते-खाते।"

"तुम भी तो जिया कभी जीजा जी को अपने हाथ में नहीं ले पाईं। उनकी पूरी नौकरी बीत गई, न कभी वेतन तुम्हारे हाथ आया, न कभी चार पैसे दुका पाईं गृहस्थी से। गालियाँ और जूते खाती रही दारूबाज आदमी के सो अलग। अरे, पत्नी अगर दिन-रात सेवा करे तो कुछ हाथ भी तो बनाए अपना।" मंझली ने अपने कान की नई डबल झुमकी लटकन को छूते हुए कहा जो उसने सालों की छुपी बचत से पिछले ही दिनों बनवाई है और पति को ये अपने मायके का उपहार बताया है।

बड़ी मौसी ठंडी साँस लेकर जीवन का सिंहावलोकन करती हैं,

"तो और क्या करती? मायके में छोटी उमर से ही सब काम समेटा। अपने हाथ-पाँव की करना नहीं जानती थी और रोटी बनाना जान गई थी। तीनों छोटी बहनों की दूसरी माँ थी एक तरह से और आधी गृहस्थन। रोटी जलती थी तो अम्मा चिमटे से उँगलियाँ चिखा देती थीं। ऐसी माँ ईश्वर दुश्मन को भी न दे। पंद्रह साल की उमर में मुझे ऐसे कुनबे में ब्याह दिया कि जहाँ चोर-उचक्का चौधरी, कुटनी भई प्रधान।"

आगे कहते बड़ी मौसी के आँसू बहने लगे,

"दाऊ तो कितना लड़े थे कि इतनी-सी बच्ची

का ब्याह मत करो राजरानी लेकिन मेरे दो साल फेल होने की बात को अम्मा ने ऐसा राई का पहाड़ बना दिया कि दाऊ फिर उनसे पार न पा सके। जिसकी माता ही शत्रु हो जाए उस संतान का जीवन नष्ट होने से फिर कौन रोक सकता है??"

"लेकिन जिया, जीजा जी की नौकरी लगते ही तो तुम उनके साथ चली गई थीं, फिर घर भी अपना दूर के शहर में बनाया।"

"भेड़ जहाँ जाएगी, वहीं मुडेगी। बचपन से इत्ती फटकारें और मारें खाईं कि आत्मा सहम गई। तुम ताने देती हो कि अपना हक क्यों नहीं ले सकीं; तो अब यहीं मिल जाए तो जीवन सफल मानूँ। बेटा दुकान डालने के लिए ठुनका बैठा है। कामधंधे से लगे तो उसका ब्याह हो। मैं तो कहती थी कि दाऊ का दिया प्लॉट बेचकर लड़के को पैसे दे दो लेकिन ये नहीं माने। इन्होंने तो साफ कह दिया है, हर हाल में मकान बेचकर आना वर्ना..." बड़ी मौसी पल्लू से आँसू पोंछती है; पति की मार का भय उनके चेहरे और आवाज में साफ है।

"इत्ता सीधा भी नहीं होना चाहिए जिया। अब तो बहू आने के दिन आ गए। क्या बहू के आगे भी मार खाती रहोगी? बेटा कुछ नहीं कहता?"

"वो कहता है मम्मी मुझे कुछ धंधा करवा दो। अपने पैरों पर खड़ा हो जाऊँ फिर देखता हूँ पापा कैसे तुम पर हाथ उठाते हैं और कैसे शराब पीते हैं!"

...साफ हो गया कि इस मकान को बेचने के लिए बड़ी मौसी पर कितना भारी दबाव है उनके घर के दोनों पुरुषों का।

नीचे दुकान से चिप्स लेकर चिंटू लौटा और अपनी माँ की गोद में बैठकर उसका फोन छीनने लगा। मँहगा-सा फोन रितु ने उसके हाथ से वापिस छीन लिया तो चिंटू चीखने लगा,

"मुझे गेम खेलने दो, नहीं तो मारूँगा साली।"

"ले जा, मर साले।"

रितु ने उसे गोद से धकेल दिया। चिंटू जमीन पर गिर पड़ा और लोट-लोटकर रोने लगा। रितु के चेहरे पर पल भर को असहनीय क्रोध उभरा; फिर विवशता। हाथ-पैर फेंकते लड़के को उसने जबरन खड़ा किया और फिर आँगन की तरफ धकेल दिया,

"सेलफोन मिल गया ना, अब मर यहाँ से!"

पलटकर चिंटू ने माँ को एक धक्का मारा और सेलफोन पर गेम चालू करता, आँसू पोंछता, आँगन के पीछे वाले कमरे की तरफ भाग गया। दोनों बड़ी बहनें गौर से पूरी घटना देख रही थीं। दोनों ने एक-दूसरे को सहमति की नजर से देखा, फिर मंझली ने बात शुरू की,

"लड़के को तुमने खूब ही बिगाड़ लिया है। तुम्हें पलटकर मारता है, गाली देता है; बच्चे ऐसे पाले जाते हैं रितु??"

"मैं अकेली जान क्या-क्या करूँ? चिंटू के पापा तो जैसे जीवन में हैं, जैसे नहीं हैं। मैं तो, समझिए कि चौबीसों घंटे काम करती रहती हूँ। सबेरे पाँच बजे सब्जी बघारनी पड़ती है। पहले ये दफ्तर को निकलते हैं फिर चिंटू स्कूल जाता है फिर गिरती-पड़ती मैं अपनी नौकरी पर जाती हूँ। स्कूल से लौटकर बेचारा बच्चा खुद ही घर का ताला खोलता है और जो फ्रिज में मिल जाए, खा लेता है। अंदर से कुंडी बंद रखने की मजबूरी अलग है उसकी क्योंकि फ्लैट में अकेला होता है। अब वो दिन से रात टी. वी. न देखे तो और करे क्या? मैं दफ़्तर से लौटते ही घर के कामों में मरती-खपती हूँ, फिर रात का खाना बनाती हूँ और साथ में चिंटू को पढ़ाती भी हूँ। इसके पापा को मेरे सुख-दुख से कोई मतलब नहीं। दिन ढले लौटते हैं सो भी एकदम चकनाचूर, किसी काम के नहीं। मेरी कार का लोन, मेरे फ्लैट का लोन, मेरे लैपटॉप का लोन- बस सिवाय लोन, लोन गाने के इनके मुँह से कोई ढंग की बात नहीं निकलती। घर का कोई काम बताओ या पैसे मांगो तो गाली बकने लगते हैं, मुझे फ्लैट से बाहर निकालने पर उतर आते हैं। हम दोनों जब भी एक साथ बैठकर बात करते हैं, झगड़ा हो जाता है; इससे तो अच्छा है कि हमारे बीच कोई बात ही नहीं होती। वे टी. वी. के सामने पड़े-पड़े खाना खा लेते हैं। नहीं तो, लैपटॉप या सेलफोन पर चेटिंग करते रहते हैं। अब ऐसे माहौल में बच्चा जिए भी तो कैसे? हर वक्त या तो कार्टून देखता रहता है या टी. वी. पर या फिर मेरे सेलफोन में गेम खेलता रहता है। किसी के पास इससे बात करने का वक्त हो तब तो बेचारा बात करने की तमीज सीख पाए।

"तो तुम घर में कोई नौकरानी क्यों नहीं रख लेतीं जो बच्चे को घुमाए-फिराए, उसके साथ खेले, ताजा खाना बनाकर खिलाए, उससे बातें करे? तुम्हारे फ्लैट में चार कमरे है ना; एक कमरे में आराम से कोई भी नौकरानी रह लेगी।"

"शहर में स्थाई नौकर इतने मंहगे हैं जितना कमाती नहीं हूँ, उतना खर्च कैसे कर दूँ?"

"तो फिर अपने बच्चे का सर्वनाश क्यों कर रही हो? क्यों करती हो ऐसी नौकरी कि जिसमें न चार पैसे जुड़े और न ही बच्चे को अच्छी परवरिश दे पाओ?"

"नौकरी न करूँ तो फिर मैं करूँ क्या दिन-रात उस फ्लैट में अकेली पड़ी-पड़ी?"

महानगरीय जीवन का भयावह एकाकीपन रितु की आँखों में आँसू बन उतर आया है। वो दरवाजा खोलकर, तपते छज्जे पर आकर खड़ी हो जाती है। नीचे बाजार में आते-जाते लोगों और वाहनों की अपने में व्यस्त एक दुनिया है। झुलसती गर्मी में रितु छज्जे पर झुकी नीचे देख रही है लेकिन पलटकर कोई नजर ऊपर को नहीं उठती। धूप की असहनीयता से वो दो कदम पीछे हट जाती है। उसे याद आता है वो समय जब इसी छज्जे पर वो खड़ी होती थी तो सड़क पर सीटियाँ बजने लगती थीं। कॉलेज को निकलती थी तो चाहने वाले पांडे सदन से गर्ल्स कॉलेज और गर्ल्स कॉलेज से पांडे सदन तक पीछे-पीछे छोड़ने आते। उसकी सुंदरता की चर्चा कस्बे भर में रहती; लड़कियाँ चिढ़ती; लड़के अश अश करके रह जाते। कितनी सुंदर रितु! पढ़ने-लिखने, पहनने-ओढ़ने में कितनी होशियार रितु!- रितु! रितु!! रितु!!

कितना सुंदर था उसका तरुण जीवन जब तक कि उसे रमेश से प्यार न हुआ था।- रमेश!! सबसे बढ़-चढ़कर प्यार का दावा करने वाला आशिक जो कस्बे की सड़कों पर उसके ताँगे के पीछे साइकिल चलाते समय, प्रेमपत्र जबरदस्ती उसे पकड़ाते समय या 'आई लव यू रितु' चिल्लाते समय तो खूब मर्दानगी दिखाता था लेकिन जब वास्तविक जीवन में रितु का साथ निभाने का समय आया तब?? ... जब रमेश की नवब्याहता अपनी सास-ननद के साथ पांडे सदन के अंदर तक आ गई थी उसको पीटने कि वो अब रमेश से मिलना-जुलना छोड़ क्यों नहीं देती, तब?? ... आनन-फानन में आचार्य जी ने एक महानगर में मामूली प्राइवेट नौकरी कर रहे बिरादरी के उम्रदराज लेकिन कुलीन वर से उसे ब्याह दिया था तब ??... रमेश ने शादी वाले दिन उसके होने वाले पति को फोन कर अपने और रितु के शरीर से लेकर आत्मा तक के प्यार का दावा पेश कर दिया था, तब ?? - रितु ने अपने जीवन के साथ हुए पहले धोखे को जाना था कि रमेश का प्यारा वास्तव में एक भूख थी; एक कायर गीदड़ की असहनीय भूख!!

फिर उसने लाख समझाया-बहलाया-रिझाया लेकिन पति के दिल में शादी के पहले दिन से ही गाँठ पड़ गई थी; इतनी सुंदर, पढ़ी-लिखी, भरपूर दहेज के साथ आई पत्नी का जरूर कोई प्रेमी था जिसे उसकी इतनी ज्यादा शारीरिक तलब थी कि ऐन शादी के दिन दूल्हे को फोन लगा बैठा! ....आचार्य जी ने अपनी बदनाम बेटी को उसके गले मढ़ दिया!

फिर रितु को अपने वैवाहिक जीवन में अपने पति से न रत्ती भर प्यार मिला न सम्मान। सब कोशिशों से थक-हारकर उसने अपना मन पति की तरफ से हटाया और अधूरे छूटे स्नातक की पढ़ाई शुरू की। सालों तक वो पढ़ती रही। बी. ए. किया। एम. ए. किया। बी. एड. किया। पी.जी.डी.सी.ए. किया। एम. बी. ए. भी कर डाला; लेकिन ढंग की नौकरी अगर हिंदुस्तान में सदैव योग्यता के बूते मिलती होती तो आज मुल्क की तस्वीर दूसरी होती। रितु एक प्राइवेट दफ्तर में नौकरी करने लगी। मायकेवालों की हड़काई, रिश्तेदारों से गरियाई, पति की दुत्कारी रितु को एक सहकर्मी से प्यार हो गया। चार दिन की चाँदनी जैसे उस प्यार में सहकर्मी की शारीरिक भूख उसे रमेश की याद दिलाती थी और ये रिश्ता बहुत जल्द टूटा जब प्यार की सच्चाई जाँचने के मकसद से रितु ने अपने प्रेमी से सोने के कंगन दिलवाने की जिद कर ली। सहकर्मी की अगली प्रेमिका महिला बॉस ने रितु को दफ्तर से बदचलनी के इल्जाम के साथ बाहर कर दिया था, अगले ही महीने ... और ये बात रितु के पति को भी मालूम चल गई थी!

अगले दफ्तर में, अभागिन को फिर प्रेम हो गया; लेकिन कुछ ही हफ्तों में रितु ने खुद ही उस दफ्तर से नौकरी छोड़ दी और अपना सेलफोन नंबर भी बदल

लिया।... उस दफ्तर का उसका प्रेमी बॉस पर्स, सूट, सैंडिल जैसे उपहारों के बदले अपनी विकृत शारीरिक भूख शांत करता था, रितु सरीखी कर्मचारियों से।

अब रितु जिस दफ्तर में काम कर रही है, वहाँ उसका कोई प्रेम नहीं हुआ। तीन बरस से वो इस नौकरी में है जिसमें वेतन कम है काम बहुत। रितु का दिल इस नौकरी से ऊब गया है। उसे दरअसल अब जीवन में सबकुछ से ऊब होने लगी है। ... कभी रिश्ते-नातेदारी से कट जाने के दुख में खूब बिसूर ली। ....कभी पति के प्यार के लिए खूब तरस ली। ... कभी पढ़ाई, नौकरी, प्रेमियों में खूब युवा साल खर्च कर चुकी जीवन के।

अब रितु की पूरी चेतना धन-दौलत पर आ केंद्रित हुई है। वो कुछ रकम जोड़कर (क्योंकि लोन शब्द से ही उसे घृणा है) दाऊ के दिए प्लॉट पर अपना लघु उद्योग शुरू करना चाहती है, चमड़े के पर्स बनाने का। इसी योजना की नींव पर अपने सुदूर भविष्य का वो शानदार बंगला खड़ा करना चाहती है, जिसमें वो अपने बच्चे के साथ, पूरी शानो-शौकत की जिंदगी जीना चाहती है लेकिन अकेली। पति से वो तलाक ले लेगी और आगे जीवन में किसी पुरुष से हर्गिज प्रेम न करेगी। अपने सुनहरे भविष्य की कल्पनाओं में ही आजकल वो जीती है, लेकिन भविष्य को वर्तमान बनाने में दिक्कत ये पेश है कि पति तो व्यापार करने की भली चलाई, घर-गृहस्थी के खर्च के लिए कभी पर्याप्त रुपए नहीं देते हैं। अब रितु अगर अपनी मामूली प्राइवेट नौकरी से पैसा जोड़ने की सोचेगी तो जीवन के और बहुत साल इन्हीं असहनीय परिस्थितियों में नष्ट हो जाएँगे बत्तीस साल की रितु के।

जाहिर है रितु को इस मकान को बेचने से कोई नहीं रोक सकता - क्या ईश्वर भी नहीं??

चहक पहले पानी फिर सलाद, अचार, पापड़ और चटनी रख गई है। हाथ पोंछती कनक आँगन से चली आई है। बर्तन मँज गए हैं। खाना भी बन गया है। थालियाँ आ गईं। चारों बहनें खाने बैठीं। महक रसोई में रोटियाँ सेंक रही है और चहक ला-लाकर सबको परोसती जा रही है। बड़ी मौसी रसोई से बैठक तक एक नजर डालती है; बिन बाप की बच्चियाँ हर समय काम करती रहती हैं। आधी माँ-सी बड़ी बहन की नजर में अब कनक है। सफेद साड़ी का पल्ला सिर पर डाले, झुके चेहरे से चुपचाप खाना खाती है। बड़ी का दिल किया, सिर पर तसल्ली का हाथ फेर दे कनको के। बूढ़ा हाथ कुछ दूर तक उठा, काँपा फिर लौट गया। अपनी विवशता में बूढ़ी रामकुमारी की आँखों में पानी भर आया। बाकी दोनों बहनों ने देखा, समझा और चुपचाप खाना खाती रहीं। रितु के पत्थर हो चुके दिल में दूसरों से ज्यादा खुद के लिए सहानुभूति है। वो बीच-बीच में चिंटू को खाना खिलाने में उलझी है और भविष्य के उस शानदार बंगले के जीवन की कल्पनाएँ करने में जहाँ पुरुषों का प्रवेश निषेध होगा। मंझली बहन से लेकिन, अब खाना खाते नहीं बन रहा। अपना सब सयानापन, इस समय अपनी दुष्टता जान पड़ रहा है। सबसे पहले थाली सरकाकर मंझली ने हाथ धो लिए। कनक खाना खाकर आँगन पार अपने कमरे में चली गई। बेटियाँ बर्तन समेट ले गईं चुपचाप और अपनी थालियाँ लगाकर माँ के कमरे में चली गईं। यहाँ से तीनों ने देखा, उस कमरे का दरवाजा बंद कर लिया गया है। .... माहौल में तनाव चरम पर है।

मंझली मौसी का दिल बुझने-सा लगा; कहीं कुछ बहुत गलत तो नहीं हो रहा। कमरे की पूरी गर्मी जैसे उनको ही लगने लगी और वे पसीने से नहा उठीं। कमरे में उमस असहनीय हो गई तो छज्जे पर पनाह ली। धूप सीमेंट के जालीदार जंगले से छन-छनकर छज्जे पर बिखर रही है। यहाँ गर्म सही, हवा तो है जिसमें साँस ली जा सकती है। जरा देर खड़ी रहने के बाद ही लेकिन, तृप्ता हाँफने लगी है। उसे शरीर में हमेशा हीमोग्लोबिन की कमी है। कमरे की उमस में लौटना ही जैसे नियति है क्योंकि वहाँ कमजोर देह को सहारे के लिए कुर्सियाँ और बिस्तर है जो ताजी हवा की कीमत पर हासिल है। मंझली मौसी न छज्जे पर रहीं न कमरे में लौटी; देहरी से टिककर हाँफने लगीं। दाऊ की याद आ गई। अभी होते तो कहते, "मौड़ी, तेरे जीवन में कितना आडंबर है।

कितना आडंबर!

अपनी नकली संपन्नता का रौब दिखाने के लिए जीवन भर क्या कुछ नहीं किया बेचारी ने। शादी-

ब्याह-समारोहों में अपनी से लेकर इस-उस की मांगकर तक पहनी होगी, लेकिन हर सार्वजनिक समारोह में उसने 'वाह! वाह!' पाने वाली ही साड़ी पहनी होगी। सोने के जेवर जो बड़े जतन से सम्हाल रखे हैं ब्याह के ही या वे जो सालों सिक्का-सिक्का चुरा कर गृहस्थी से बनवाए हैं, उनसे लदकर रिश्तेदारियों में भले जाती है; घर भीतर कभी सोने का एक छल्ला न पहना होगा जीवन भर। दाऊ का दिया प्लॉट बेचकर और पति पर दबाव बनाकर, पंद्रह सालों का लोन लिवाकर एक बड़ा मकान तो बनवा लिया है पॉश इलाके में, लेकिन असली आर्थिक स्थिति तृप्ता की ये है कि घर भीतर वो फटी साड़ियाँ सीकर पहनती है, और रसोई में एक सब्जी या चटनी के अलावा ज्यादा व्यजंनों वाला खाना किसी त्योहार पर ही बनाया जाता है। आसपास ही दोनों देवरानियों के भी मकान हैं जिन्हें कुछ समय पहले ही अपने-अपने मायके से हिस्सा मिला है। एक देवर ने उन रुपयों से नई कार खरीदी है तो दूसरे देवर ने न सिर्फ अपने डुप्लेक्स का रेनोवेशन करवा लिया है, फर्नीचर भी नए जमाने का खरीद लिया है। उसकी पत्नी ने नए से नए चलन के कुछ जेवर भी गढ़वा लिए हैं.... आडंबर नहीं, असली संपन्नता।।

अब पति और बच्चे अपनी छिपी गरीबी से निजात चाहते हैं; और बाहरी जीवन में बातों के बड़े-बड़े पुल बाँधने वाली तृप्ता घर-भीतर उन सब के तानों के सामने हाँफ रही है।

....भारी दबाव है, मंझली मौसी इस मकान को हर हाल में बेचेंगी।

पसीना, उमस, गर्मी, बेचैनी में हाँफता दिन जैसे थककर बैठ गया है। कमरे में ठहर गया, पहाड-सा दिन काटे नहीं कट रहा। चिंटू तख्त पर सो गया है। रितु उसे पंखा झल रही है। बड़ी मौसी सुपारी के गट्टे कतर-कतर के पीतल के प्राचीन डब्बे में भर रही है। मंझली सोफे पर लेटी खुद को पंखा झल रही है। नींद लगती है, हाथ का पंखा रुकता है फिर नींद खुलती है फिर पंखा झलने लगती है। नींद, गर्मी और ऊब के बीच दीवार पर टंगी दाऊ के जीवनकाल वाली कुछ टूटी और बहुत पुरानी घड़ी तीन घंटे बजाती है।

"तीन बज गए।" मंझली मौसी ने सावधान होकर बैठते हुए कहा। रितु भी मंझली के पास सोफे पर आ बैठी। बड़ी मौसी ने सुना तो लेकिन उनका सिरौता नहीं रुका, अलबत्ता उन्होंने आवाज लगाई, "महक, तनिक अपनी मम्मी को जगा तो दो और चाय भी दे जाओ इधर।"

तीनों के दिल तेज़ धड़क उठे हैं- अपनी अबला बहन को आज घर से बेघर करना है।

कनक उनींदे चेहरे को धोकर चली आ रही है, चाय के साथ महक और चहक भी मौजूद हो गई हैं। तो अब वही बात करने की घड़ी आ गई जिससे सबने भरसक बचना चाहा। बड़ी मौसी ने चाय का पहला गर्म घूंट लिया, "कनक, हम ये मकान बेच रहे हैं।"

"बड़ी मौसी, मकान तो आप नहीं बेच पाएँगी।" जवाब चहक ने दिया।

रितु को इस लड़की पर हमेशा ही जितना गुस्सा आता रहा है, सब्र तोड़ने का ये बढ़िया मौका है, "हम लोग क्या कर पाएँगे और क्या नहीं सो कल सुबह पता चलेगा जब इस मकान की रजिस्ट्री होगी और तुम माँ-बेटियाँ यहाँ से मुँह काला करके निकलोगी।"

"रितु! रिश्तों की मर्यादा न भूलो।" - कनक के माथे पर सख्त शिकन आ गई।

"रिश्तों की मर्यादा?? रिश्तों की मर्यादा का नाटक करें वो जिन्होंने सालों ऐश किए दाऊ की संपत्ति पर; और भीतर ही भीतर सब माल साफ कर दिया। अब तुम सब को इस घर से निकलना होगा।"

चहक अपनी माँ से आगे आकर, रितु मौसी के एकदम सामने आ खड़ी हुई, "हम क्यों निकलेंगे? इसलिए कि हमारी मम्मी ने जीवन भर नाना-नानी की सेवा की या इसलिए कि हर साल सर्दियों-गर्मियों की छुट्टियों में आप सब आकर लेट जाती हैं और हम गुलामी करते हैं और आप लोगों के ताने सहते हैं। रितु मौसी, नानी की जहरीली जुबान तो पूरी की पूरी आप ही ने पा ली विरासत में।"

"कनक! अपनी बेटियों को चुप रहने को कहो, नही तो रिश्तेदारी पहले टूटेगी, घर बाद में बिकेगा!" - मंझली मौसी तैश में आ गईं लेकिन खड़ी नहीं हुई, बैठी रहीं।

"ये घर हमारा भी है।" बड़ी मौसी ने बगल में

रखा पीतल का प्राचीन डब्बा उठाकर अब गोद में रख लिया और सिरौता से सुपारी कतरती रहीं।

"और इसी हक से हम ये घर बेच रहे हैं कल सुबह।" '-रितु मौसी ने निर्णय ऐसे सुनाया जैसे झटके से कोई धागा तोड़ दिया हो।

बड़ी मौसी की आवाज में लेकिन लगावट बाकी है,

....अब रजिस्ट्री पर दस्तख़त करने के सिवाय तुम्हारे पास और कोई रास्ता नहीं कनको! तुम्हें एक बटा चार हिस्सा तो मिलेगा ही रुपयों में से। कहीं कमरे-दो कमरे का मकान ले लेना। हाँ इत्ता हम कर सकते हैं कि मकान खरीदने वाले से कहें कि तुम्हें आध-एक महीने यहाँ रह लेने दे और तब तक तुम माँ-बेटियों के लिए कहीं छोटा-सा कोई मकान, नहीं तो किराए का ही कोई कमरा...-

मंझली मौसी को अपनी बड़ी बहन के इस भेड़पन पर खूब गुस्सा आया, "जिया, जब लक्ष्मी तिलक करने खड़ी हो तो मुँह धोने नहीं जाना चाहिए। खरीदने वाले को खरीदने के मिनिट से ही पूरा हक होगा इस मकान पर और इन तीनों को तुरंत ही मकान खाली करना होगा। तुम नाहक दया दिखा रही हो, अरे जरूर इस कनकिया ने कहीं एक-दो मकान या प्लॉट खरीद रखे होंगे। इतने सालों तक दाऊ की पेंशन और तीनों दुकानों का किराया इसी के हाथ में तो आता था। तरघुन्नी है ये; हमें दिखाने को घर की दशा दीनहीन बना रखी है वर्ना हम चारों में सबसे अमीर यही है।"

"मंझली मौसी!!" महक सहन करने की अंतिम सीमा पर आकर भी आवाज को काबू में रखकर बात कर रही है, "आप लोगों का कोई हक नाना जी के इस मकान में नहीं बचा है क्योंकि वे तो बहुत साल पहले ही आप लोगों को हिस्सा दे चुके थे। आप में से हरेक ने हमारी मम्मी के मुकाबले बहुत ज्यादा ही पाया है नाना जी से। आप लोगो को उन्होंने प्लॉट दिलवाए। आप सब की शादियों में खूब दहेज दिया। हमारी मम्मी ने तो लव मैरिज की थी। नाना जी का धेला खर्च नहीं हुआ उन पर कभी। हम दोनों बहनों का जन्म कब हुआ, उन्हें तो ये तक खबर न थी, कुछ देना तो बहुत दूर की बात थी। उनके लिए तो हमारी मम्मी मर गई थीं जब तक कि हमारे पापा ही न मर गए। फिर इस घर में लौटकर भी क्या पाया हमारी मम्मी ने? शर्मिंदा नौकर की तरह दिन-रात चाकरी करती रहीं ये, नाना-नानी से लेकर आप तीनों के कुनबों तक की।"

"लड़कियाँ है कि तलवारें हैं! लेकिन साफ सुन लो, हम मकान बेचेंगे और जरूर बेचेंगे; और अगर तुम दस्तख्त न करोगी तो भी मकान खरीद लेंगे मकान के खरीददार।" मंझली मौसी सोफे से खड़ी हो गईं।

"सो तो न हो पाएगा जिया।" -कनक ने बेटियों को पीछे किया और आप आगे हुई; सामने उसकी तीनों सगी बहने खड़ी हैं।

रितु सब रिश्ते भूल चुकी है, उसके दिमाग में सिर्फ उन रुपयों का हिसाब है जो इस मकान के बिकने पर उसे मिलने वाले हैं।

"तुम लोग क्या कर लोगी; मारपीट करोगी हमारे साथ? बड़ी जिया ने तीन बजे का टाइम दिया है माँगीलाल कक्का को, आते ही होंगे। उन्हीं की मार्फत ये सौदा हो रहा है। दूसरी पार्टी को तेरहवीं के दिन मकान हमने दिखा दिया था, दाम भी तय है। माँगीलाल कक्का तो तुम्हारा पक्ष भर जानने आ रहे हैं। वैसे उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। कल सुबह कचहरी खुलते ही पांडे सदन बिका मानना तुम लोग।"

कनक चुपचाप उठकर अंदर चली जाती है।

"मम्मी, कहाँ जा रही हैं आप?" चिंतित महक पीछे चली जाती है।

"जाएगी कहाँ? मुँह ढाँपकर रोएगी और क्या? जीवन में कर्म ही ऐसे करे हैं!" मंझली ने सोफे पर बैठकर सुस्ताते हुए कहा।

"अरे छोड़िए! कल सुबह होने वाली रजिस्ट्री की तैयारी कीजिए। ये बताइए, पैसे किस तरह लेने हैं; एकाउंट्स में या सबके नाम अलग-अलग चेक?

तभी दरवाजे की घंटी बजती है, और पांडे सदन की सीढ़ियाँ चढ़कर माँगीलाल साहूकार ऊपर बैठक में प्रवेश पाता है।

"आइए कक्का। आप ही की राह देख रहे थे। चहक जा, पानी तो ला कक्का के लिए। ये हर मौका-बखत पे ऋण देते रहे दाऊ को जीवन भर।"

"अजी, ऋण दिया तो कौन एहसान किया, ब्याज भी तो पाया। आचार्य जी तो क्या बात के धनी आदमी थे। जिस दिन लौटाने को कहा, उसी दिन लौटाया। कभी उनकी बात में फर्क न पड़ा। क्या खरा आदमी था वो भी।"

आगंतुक ने रूमाल से ऐसे आँखे पोंछी कि आचार्य जी की मृत्यु पर उनका शोक व्यक्त हो गया।

चहक अपनी जगह से हिली भी नहीं। तेज़ नज़रों से सबको घूरती रही।

"मैं ही पानी लेकर आती हूँ। चाय पिएँगे क्या आप?" मंझली मौसी ने पूछा लेकिन सोफे से उठी नहीं।

"नहीं! नहीं! चाय-पानी सब पी-पाकर आया हूँ। मैं तो बस आप लोगों को खबर करने आया था कि आपके कहे दाम तैयार रखे हैं दूसरी पार्टी के पास। आप तीनों तो आई थीं सबेरे दुकान पर लेकिन मैंने सोचा, कनक बिटिया से भी पूछता चलूँ। बाकी, आप पुरानी रजिस्ट्री की फोटोकॉपी दे दें तो मैं कागज़ ही तैयार करवाने जा रहा हूँ यहाँ से सीधा कचहरी। कल सबेरे दूसरी पार्टी की जीप लेकर आऊँगा आप लोगों को लिवाने।"

"लेकिन मैं ये मकान नहीं बेच रही हूँ न आज न कल, न कभी।"

"हमें पहले से ही पता था कि तुम ऐसी ही नौटंकी करोगी इसीलिए दूसरी पार्टी से तुम्हें कभी मिलवाया ही नहीं। ठीक है काका, आप मकान के तीन चौथाई हिस्से की रजिस्ट्री के लिए कागज तैयार करवा लीजिए। और दाऊ का कोई कागज़ या वसीयतनामा हमारे पास नहीं है, आपको खुद ही निकलवानी पड़ेगी उनकी पुरानी रजिस्ट्री कचहरी से।" मंझली मौसी ने बड़ी मौसी के गोद में रखे पीतल के प्राचीन डब्बे में से कतरी सुपारी उठाकर मुँह में डालते हुए कहा।

"हाँ! हाँ! जैसा कहें आप लोग। कागज़ ऐसे ही बनवाए लेता हूँ। तो दाम वही रहे जो सबेरे दुकान पर तय हुए थे? पैसा किस रूप में लेंगी आप लोग?"

"मैंने कहा ना, मैं पांडे सदन नहीं बेच रही हूँ जिसको जेल जाना हो, वो जाली रजिस्ट्री करवाए।"

कनक ने हाथ के कागजात साहूकार की ओर बढ़ा दिए। रितु बाघिन की तरह आगे बढ़ी, "ये कैसे कागज़ हैं? अब ये क्या नया प्रपंच है?"

लेकिन रितु से पहले साहूकार ने आगे बढ़े कागजात हाथ में ले लिए और गंभीरता से पढ़ने-पलटने लगा। "ये तो...??"

"जरूर ये कोई फर्जीवाड़ा है। दिखाइए मुझे।" रितु कागज झपटती है और पढ़ने लगती है, 'ये तो .. ये तो रजिस्ट्री है??... जरूर ये रजिस्ट्री झूठी है।"

"क्या रजिस्ट्री? काये की रजिस्ट्री? दिखाओ तो।" मंझली मौसी ने झपटकर कागज़ ले लिए। उलटपुलट कर कुछ देखा फिर कागज़ फाड़ दिए।

"जिया, फोटोकॉपी फाड़ने से न मेरा कुछ बिगड़ना है न आपका कुछ बनना है। असली रजिस्ट्री आप कभी न फाड़ सकेंगी और फाड़ेंगी तो दस दफे नई निकल आएगी कचहरी से।"

"हम नहीं मानते इस रजिस्ट्री को। दाऊ जब मरने को हो आए होंगे तो उनके हाथ में पेन पकड़ाकर कहीं भी दस्तख्त करवा लिए होंगे। हमें तो उनके मरने के बाद खबर दी तुमने; अंत समय उनके पास हम होते तो ये हर्गिज़ न होने देते।"

"ये कागज़ आज के नहीं हैं। बारह बरस पहले के हैं। रजिस्ट्री, दाखिल-खारिज, बिजली मीटर, नल कनेक्शन- लीजिए कक्का, सब की एक-एक फोटोकॉपी देख लीजिए।"

कनक पल्लू के पीछे से दूसरे कागजात निकालकर साहूकार की तरफ बढ़ाती है।

"ना बिटिया। मैं देख चुका। बस, यही कहूँगा कि कभी मकान बेचने का मन बने तुम्हारा तो....

'नमस्ते कक्का।"

"नमस्ते बिटिया।"

साहूकार के जाते ही मंझली मौसी सोफे पर निढाल लेट गई; मुँह की सुपारी उन्होंने कड़वाहट से एक ओर थूक दी।

सब स्तब्ध थे कि अभी-अभी धोए मुँह-हाथ पोंछती महक बैठक में आती है। उसने अपनी पिछली फटी-मैली मैक्सी बदलकर कुछ बेहतर सलवार कुर्ता पहन लिया है।

"चार बजने वाले हैं। ट्यूशन पढ़ने वाले बच्चे आते ही होंगे। आप सब बैठक खाली कर दें।"

महक सोफा, मेजपोश, तख्त की दरी वगैरह सुव्यवस्थित करने लगी है। कटौती का समय पूरा हुआ; गुल बिजली चार घंटे बाद लौट आई है।

सब एक-एक कर वहाँ से उठ जाते हैं और जाने से पहले बड़ी मौसी ने पीतल का वह प्राचीन डब्बा मेज पर वापिस रख दिया है।

– खेड़ापति हनुमान मंदिर के पास, सूद पेट्रोल पंप के पीछे, लाऊखेड़ी, एयरपोर्ट रोड,
भोपाल (म. प्र.) 462030

❑❑❑

# सर्जा-राजा

कृष्णा कदम

आज दामोदर अचानक बाजार में दिखाई दिया। दामोदर को देख गाँव का लतीफ भाई उसके पास आया। लतीफ ने दामोदर को कभी भी अपनी खेती-बाड़ी छोड़ दूसरी ओर देखा नहीं था। दामोदर का स्वभाव "अपना घर भला और अपनी खेती भली" सा था। दामोदर के पास लगभग पाँच एकड़ खेती थी, वह भी मौसम भरोसे। केवल जाड़े में सिंचाई होती थी। अगर अच्छी बारिश नहीं हुई तो उसकी खेती असिंचित ही रहती थी। दामोदर की शादी को पंद्रह साल हुए। उसकी शादी एक आम परिवार की लड़की रुक्मिनी से हुई। दामोदर अनपढ़। रुक्मिनी थोड़ी पढ़ी-लिखी। उनको एक के बाद एक पाँच साल में तीन बच्चे हुए छाया, प्रकाश और सुनील। वैवाहिक जीवन में सुरक्षित यौन संबंध रखें इतनी समझ-बूझ दामोदर को नहीं थी। अब छाया आठवीं, प्रकाश छठी और सुनील चौथी कक्षा में पढ़ रहें थे।

रुक्मिनी और दामोदर खेती के भरोसे घर व बच्चों की पढ़ाई का खर्चा चलाते थे। दोनों परिश्रमी थे। अन्य किसानों की तरह दामोदर गाँव में ग्यारह बजे तक आवारा नहीं घूमता था। सुबह उठ जानवरों का सानी-पानी होते ही नहाकर, रूखी-सूखी रोटी लेकर खेत में जाता। उसके पीछे-पीछे घर का काम-धाम निबटा, बच्चों की स्कूल जाने की तैयारी कर रुक्मिनी भी खेत में जाती। कुछ दिन पहले दामोदर का एक बैल बीमार हो मर गया। जानवरों के हक़ीम को दिखाया, परंतु बैल की जान नहीं बच पाई। अब केवल उसका जोड़ीदार एक बैल ही शेष था। हल को वह एक-दो साल चला सकता था। पर ऐसे बूढ़े बैल के साथ कोई भी खेतिहर साझेदारी के लिए राजी नहीं हो रहा था। आखिर दामोदर ने वह बैल मन मारकर कसाई को बेच दिया। "घर की गाय का बछड़ा है, खूँटे पर ही मरने दो" कह रुक्मिनी विनती करती रही। पर दामोदर को खेती की जुताई के लिए दूसरी जोड़ी खरीदनी थी, इसलिए उसने वह अकेला बैल सीने पे पत्थर रख बेच दिया।

लतीफ भाई दामोदर के पास आकर कहने लगा, "क्यों मालिक! आज इधर कैसे?"

लतीफे को दामोदर की सारी हकीकत मालूम थी और उसे बैल की जोड़ी खरीदने की खुसुर-फुसुर उसके कानों तक पहले ही पहुँच चुकी थी। दामोदर गाँव के बिचौलिए लतीफ से कहने लगा, "बैलों की जोड़ी देखनी थी, इसलिए बाजार आया था" यह सुनते ही लतीफ के चेहरे पर रौनक आ गई। वह मन-ही-मन सोचने लगा, "मुझे बूढ़ा बैल बेचा नहीं। दूसरे कसाई को दिया। अब हाथ आया कि नहीं बकरा।" दामोदर ने उसे हिलाया, "क्या सोच रहे हो?" "कुछ नहीं। हाँ तुझे अच्छी बैलों की जोड़ी ढूँढ़ खरीदकर देने की सोच रहा था।"

लतीफ बाजार में दामोदर को बैल दिखाते हुए घुमाने लगा। अच्छे बैलों वाले चालीस-पचास हजार से कम दाम में बैल को हाथ भी लगाने नहीं दे रहे थे। चैत का सूरज आग उगल रहा था। बाजार के बीच के छाँव वाले पेड़ कब के गायब हो चुके थे। उस जगह बैलों

की कतारें खड़ी थी। धूप से बार-बार गला सूख रहा था। होटल वाला चाय के बगैर पानी पीने नहीं दे रहा था। बकरियों एवं बैलों की चिल्लाहट सुनाई पड़ रही थी। देखते-देखते चार बज गए तो भी दामोदर को बैलों की जोड़ी पसंद नहीं आ रही थी। बैल के व्यापारी बिचौलिए के सिवा सौदा पटने ही नहीं दे रहे थे। आखिर एक बैलों की जोड़ी दामोदर को बेहद पसंद आई। उसके मन की गड़बड़ी देख लतीफ ने दाँव खेला। उसकी व्यापारियों के साथ सांठ-गांठ थी। दामोदर बैलों को निहारने लगा। बैल पर दाग-धब्बे हैं। क्या? कहीं कोई बैल लंगड़ा तो नहीं, या खर्राटे भरनेवाले तो नहीं? सब देख उनकी जाँच-परख कर तसल्ली की। बैलों की जोड़ी अभी-अभी ही पूरे दाँत बना चुकी थी ऊँची कद-काठी, सुडौल लाल रंग वाली बैलों की जोड़ी दामोदर के मन में बसी, परंतु व्यापारी पचास हजार से कम दाम करने के लिए तैयार ही नहीं था। दामोदर व्यापारी से कहने लगा, "वो भाईसाब! इतनी रकम खूब ज्यादा हुई ये तो अभी बछड़े ही हैं, भादे (बड़े) बैल नहीं। हल पर खड़े हो खींच भी नहीं सकेंगे।" यह सुन व्यापारी गुस्सा हो गया, "सारे बाजार में देख। इतने दाम में ऐसी बैलों की जोड़ी कहीं मिलती है क्या? ये क्या घर बिठाने वाली चीज़ थोड़े ही है? अच्छे-खासे जवान बछड़ें हैं।" दामोदर को यह बात बुरी लगी पर चीज दूसरे की थी, क्या करता।

लतीफ ने इस बीच व्यापारी को आँखों से इशारा किया। इशारा समझ व्यापारी नरमाई से बोलने लगा। दामोदर ने चालीस हजार में बैल मांगे थे। व्यापारी लतीफ से कहने लगा, "यह बैल मुझे कितने में मिले यह तो तुझे पता है।" इसकी तसल्ली दामोदर को कराने के लिए लतीफ ने उससे कहा, "मेरे सर पर रोटी है। भाई को भी यह जोड़ी पचास से कम दाम में नहीं मिली।" लतीफ ने सर पर रखी रोटी हाथ में पकड़ी। यह देख दामोदर को विश्वास हुआ कि, सही में नहीं आई होगी पचास हजार से कम दाम में ऐसी छरहरी बैलों की जोड़ी और उसने रोटी भी हाथ में धर ली। परंतु दामोदर को यह मालूम नहीं था कि लतीफ के सर पर रोटी नहीं रुमाल के भीतर चप्पल लपेटकर सर पर रखी हुई है। भोले-भाले लोगों को विश्वास दिलाने हेतु वह ऐसा करता था। अन्न के नाम पर दामोदर को फँसाया जा रहा था। बिचौलियों और व्यापारियों की कानाफूसी से बेचारा दामोदर अंजान था। आखिरकार पैतालिस हजार में सौदा पट गया। लतीफ ने बीच में ही पाँच हजार रुपए गटक लिए। दामोदर से भी पाँच सौ रुपए दलाली ले ली। दामोदर ने साथ में लाए पाँच हजार रुपए बयाना के रूप में दिए और बाकी के रुपए आठ दिन के बाद चुकता करने की मोहलत ले ली। बाजार में दामोदर ने लतीफ को चाय पिलाई और बैलों की जोड़ी लेकर गाँव की तरफ निकला।

घर की चौखट पर रुक्मिनी और बच्चे दामोदर की राह देख रहे थे। बाबा बैल लाने वाले थे इसलिए बच्चे खुश थे। बच्चों को मिठाई की आस थी। प्रकाश एवं सुनील चार बजे से ही गाँव द्वार पर आकर बैठ गए। बाबा बैलों की जोड़ी लेकर आते हुए दिखाई देते ही प्रकाश और सुनील उनकी तरफ भागने लगे। दोनों ने बाबा के हाथ से बैलों की रस्सी अपने हाथ में ली। घर के सामने रंगोली निकालकर रुक्मिनी ने बैलों की आरती की और घर के अंदर चली गई। मुस्टंडी बैलजोड़ी देख गाँव वालों की दामोदर के घर के सामने भीड़ लग गई। दामोदर ने बच्चों के हाथ से गाँव वालों का मुँह मीठा कराया। दामोदर के बेशकीमती बैल देख कुछ लोग वाहवाही कर रहे थे तो कुछ नाक-भौं सिकोड़ रहें थे। कोई कहता "दामोदर ने क्या मस्त जोड़ी लाई। जमींदार पटेल की नाक ही कटवा दी।" तो किसी का कहना, "पटेल बहुत जालिम है। उससे बड़ा कद पाना लोहे के चने चबाने जैसा है।" बैल देख लोग चले गए। दामोदर ने बैलों को नाँद से बाँध सानी-पानी करवाया। बैलों की पीठ पर प्यार से हाथ फेर दिया। गले में घंटियाँ बाँध दी। घंटियाँ बाँधने से बिच्छूकांटा या सांप नजदीक नहीं आते और चोरों को भी चोरी करनी नहीं, ऐसी दामोदर की धारणा थी। बैल गरीब थे। बच्चे उनके गले में पड़े या पैरों के नीचे से जाने पर भी बैल जगह से हिलते नहीं थे। इतने शांत खड़े रहते थे।

दामोदर दिनभर बाजार में घूम-फिर एवं चल कर थक गया था। बीवी और बच्चे बैलों की कीमत जानने के लिए उत्सुक थे। बच्चे मिठाई खाने की जल्दबाजी कर रहे थे। शाम हो चुकी थी। खाना खाने का समय हो गया था। सब लोग चूल्हे के निकट खाने

के लिए बैठ गए। रुक्मिनी ने झोले से मिठाई निकाल बच्चों को बराबर हिस्सों में बाँट दी। स्वाद चखने के लिए थोड़ी-थोड़ी पति और स्वयं की थाली में परोसी। नि:शब्द बैठे दामोदर को देख वहमा पूछने लगी, "अजी सुनते हो! थोड़ी देर पहले आप तो खुश थे और अब क्यों एकाएक चुप हो गए? उल्टा हम तो ऐसे बैलों की जोड़ी देख बहुत प्रसन्न हुए। कितने के हैं बैल?" लगातार सारे प्रश्न पूछ रुक्मिनी मुक्त हो गई।

दामोदर सोच-विचार में पड़ा था कि पैसों का जुगाड़ कैसे किया जाए? फिर वह हँसते हुए बोला, "पैंतालिस हजार के।" यह सुन वहमा भौंचक हो गई। वह दामोदर से कहने लगी, अजी! इतनी रकम कहाँ से जुटाएँगे? अपने घर में पैसों का पेड़ थोड़े ही है? कोई भी काम करते समय आप आगे-पीछे की सोचते ही नहीं"।

दामोदर को भी अब लगने लगा कि उसे इतनी महँगी जोड़ी नहीं खरीदनी चाहिए थी। दामोदर का अपना गणित अलग ही था। वो आगे की सोचता था। नई जोड़ी होगी तो पंद्रह साल देखने का काम ही नहीं। ऐसा उसे लगता था। घर में दो क्विंटल कपास थी। इस साल बारिश भी कम हुई। जाड़ें की सिंचाई हुई नहीं। अरहर की दो ही बोरियाँ हुई। थोड़ी-सी ज्वार बोई थी, वह भी सालभर के लिए पर्याप्त नहीं थी। हर साल बीस क्विंटल कपास होती थी पर इस साल केवल दो क्विंटल ही हुई। मौसम विभाग से समाचार पत्र में खबरें आ रही थीं कि, "इस साल भरपूर बारिश होगी। किसान सुखी हो जाएगा।" यह सुन दामोदर ने भी जून के पहले ही हर साल से अधिक खाद, दवा खरीद कर रख ली। सूखी जमीन में ही खाद डाल दिया। आखिर मौसम विभाग का अनुमान हवा जैसा ही उड़ गया। दामोदर को अब लगने लगा कि किसान संगठन के लोग सही कहते थे, "व्यापारी का खाद, बीज, कीटनाशक बिक जाए इसलिए मौसम विभाग से सांठ-गांठ करते हैं। उन्हें टेबल के नीचे से रुपए देते हैं। फिर मौसम विभाग बारिश ज्यादा होने की भविष्यवाणी करता है।" दामोदर को यह होशियारी देरी से समझ में आई, क्योंकि दामोदर ने स्वयं एक हजार की खाद की थैली अधिक पैसे दे बारह-सौ में खरीदी थी। उसकी दुकानदार के साथ भाव के संदर्भ में किरकिरी हो गई थी। पर सारे किसान चुपचाप खाद, दवा, बीज खरीद रहे थे। व्यापारी बारह-सौ रुपए लेते और रसीद तो एक हजार की ही देते थे।

दो क्विंटल कपास के कितने पैसे आएँगे, यही विचार दामोदर खाना खाते समय कर रहा था। राजनेताओं ने चुनाव के वक्त चुनकर आने के बाद कपास को दस हजार रुपए भाव देने का वादा किया था। पर प्रत्यक्ष रूप से चार हजार रुपए भाव भी कपास को मिल नहीं रहा था। तुअर की एक बोरी दाल घर में ही रखनी पड़ेगी और बची हुई तुअर की एक बोरी के दो हजार रुपए आएँगे। ऐसा विचार कर दामोदर के दिमाग में घूम रहा था। थाली में से रोटी-सब्जी खत्म होने का ध्यान भी दामोदर को नहीं रहा। पत्नी ने उसे टोका, "अजी! केवल खाली हाथ धर क्यों बैठे हो? रोटी और सब्जी आपकी थाली में से कब की खत्म हो गई। पेट नहीं भरा क्या? "नहीं।" कह दामोदर ने और एक रोटी खाई। दामोदर पत्नी से कहने लगा, "उपज के दस हजार आएँगे पर बाकी के रुपए कैसे जुटाएँ जाए यही सोच रहा हूँ।"

"यह तो आपको पहले ही सोचना चाहिए था। अब पानी में छलांग लगाई है तो हाथ-पैर हिलाने ही पडेंगे।" ऐसा ढाँढस वह दामोदर को बँधा रही थी। खाना खाने के समय बच्चे भी माँ-बाप की बातें सुन रहे थे। उन्होंने भी अपनी-अपनी शिकायत उनके सामने रखने की शुरुआत की। छाया को पहनने के लिए दो ही ड्रेस थी। उसमें से एक स्कूल की, वह भी अब गलने लगी थी। वह कहने लगी, "जो स्कूल की एक ड्रेस है वही रोज धोकर पहनती हूँ। वह अब काफी पुरानी हो गई है। दो जगह से फट भी गई है। वह देख स्कूल की लड़कियाँ हँसती है मुझ पर।" प्रकाश और सुनील की भी यही दुर्दशा थी। सातवीं कक्षा की पाठशाला गाँव में नहीं थी इसलिए प्रकाश को पढ़ने के लिए दूसरे गाँव पाँच मील की पैदल यात्रा कर जाना पड़ता था। छाया भी वही पढ़ती थी। परंतु उसे सरकारी लेडीज साइकिल मिली थी। प्रकाश कह रहा था, "मैं दीदी की लेडीज साइकिल पर नहीं बैठूँगा। लेडीज साइकिल पर बैठते मुझे शर्म आती है। उस साइकिल पर बैठने से दोस्त भी मेरा मजाक उड़ाते हैं।" सबसे छोटा सुनील लाडला था। दामोदर ने उसे इस वर्ष सेमी मीडियम स्कूल में

डलवाले का वादा किया था। वह भी रो-रोकर कहने लगा, "मुझे नहीं जाना मराठी स्कूल में। मुझे तो कलक्टर बनना है। सेमी में मराठी-अंग्रेजी दोनों ही भाषा की शिक्षा मिलती है। इस वर्ष मैं जाऊँगा तो उसी स्कूल में, नहीं तो घर पर ही बैठा रहूँगा।" बेटे की बातें दामोदर को सही लग रही थी। पर क्या करता। उसे लगता कि, "अपनी जिंदगी ऐसी ही खेती में खटने एवं दरिद्रता में गई। बच्चें पढ़ें, कुछ बने तो कम से कम बुढ़ापा सुख से गुजर जाएगा।"

दामोदर और रुक्मिनी एक साल से फटे कपड़े एवं जूते सीकर पहन रहें थे। रुक्मिनी ने बच्चों को समझा-बुझाकर शांत कर दिया। उसने अपने पास बचाकर रखें रुपए और गहने पति को दे दिए। गहने भी क्या थे? केवल कान के कर्णफल और मंगलसूत्र। बस इतने ही गहने। मंगलसूत्र छोड़ बाकी सब पति के हवाले कर दिए। दामोदर को गहने बेचते वक्त बहुत बुरा लगा कि, "अपनी बीवी के लिए मुझे शौक से एकाध गहना खरीदना चाहिए था। पर ईश्वर ने जो है उसे ही बेचने की नौबत लाई।" सुनार ने पुराने गहने खरीदते वक्त वह दागी है कहकर बीस प्रतिशत रकम काट ली। गहनों के बीस हजार, फसल के दस हजार ऐसे तीस हजार मिलाकर आठ दिन के बाद दामोदर ने व्यापारी को दिए। बाकी बचे दस हजार। दामोदर ने गाँव के साहूकार से हाथ-पाँव पड़ दस प्रतिशत प्रति सैकड़ा ब्याज से ऋण लेकर वे भी व्यापारी को दिए।

बैलों के पैसों की चिंता मिट जाने से दामोदर के परिवार ने खुली सांस ली। इस साल अगर ईश्वर की कृपा से अच्छी बारिश हुई तो बच्चों के सारे लाड-प्यार पूरे करेंगे। सोते समय दामोदर और रुक्मिनी चर्चा कर रहे थे। सुनील एवं प्रकाश ने उनकी रुचि अनुसार बैलों के नाम सर्जा-राजा रखें। बैल इतने गरीब थे कि छाया और रुक्मिनी भी उनका सानी-पानी तथा छोड़ने-बाँधने का काम करती थी। बैलों की जोड़ी हल को जोतने पर भागती हुई चलती थी। दामोदर बच्चों-सा बैलों का ख्याल रखता था। दामोदर के दोनों बेटो को बैलों से बेहद लगाव हो चुका था। अब सब अपने मन माफिक हो रहा है इसलिए दामोदर बैलों पर काफी खुश था।

इस वर्ष मृग नक्षत्र में ही बारिश हुई। एक ही बारिश पर खेत की बुआई कर दोबारा बुआई का संकट ओढ़ लेना दामोदर जैसे किसानों को फायदेमंद नहीं था। उसने दोबारा बारिश गिरने पर बुआई करने की ठान ली। कुछ किसान बुआई करने में व्यस्त थे। पहली बारिश के बाद चार दिन बारिश ही नहीं हुई। पाँचवें दिन सुबह ही बारिश शुरू हुई और दिनभर रही। बच्चे दूसरे दिन बुआई करने की उमंग में रात को जल्दी ही सो गए। उस रात दामोदर और रुक्मिनी एक-दूसरे के बाहुपाश में सराबोर हो गए। दामोदर सपने में देख रहा है, "पूरा घर कपास से भरा है। छाया और प्रकाश को स्कूल जाने के लिए गाड़ी खरीदी है। सुनील बैग और डिब्बे के साथ स्कूल बस में सेमी माध्यम की पाठशाला में जा रहा है। रुक्मिनी नवेली दुल्हन की तरह सज-धज बच्चों को स्कूल भेज रही है। घर के सामने ट्रैक्टर खड़ा है।" इतने में मुर्गे की आवाज आई। दामोदर हडबड़ाकर नींद से उठा तो सामने से सब कुछ नदारद था। वह मन-ही-मन हँसने लगा। सुबह के चार बजे थे बारिश अच्छी हुई थी। बुआई हेतु जाने के लिए वह बड़े सवेरे ही सानी-पानी करने गौशाला की ओर आया। दरवाजे में पैर रखते ही उसकी आँखों के सामने अंधेरा छाने लगा। चक्कर आकर दामोदर गौशाला के द्वार पर बेहोश गिर पड़ा। गाँव के चोर-उचक्कों ने मिलकर दामोदर के दो बैल यानी दो हाथ 'सर्जा-राजा' चुरा लिए थे। थोड़ी देर में होश आने के बाद उसने देखा, अंधेरे को फांदकर सूरज उग रहा है। सूरज के उजाले में भी उसकी आँखों के सामने घना अंधेरा छाया हुआ था।

– सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, अंकुशराव टोपे महाविद्यालय, जालना-431203, महाराष्ट्र

❑❑❑

# स्वतंत्र दिवसले जन्माएको अभिव्यक्ति

**मूल : इंद्र बहादुर गुरूङ**

हरेक स्वतंत्र दिवसमा
तिरंगा ध्वजले हामीलाई
सुख, समृद्धि र सुरक्षाको
विश्वास दिलाउँछ
देशभक्ति प्रति
कर्तव्य बोध गराउँछ
अनि यहि दिन
तिरंगा ध्वजलाई सम्मान गर्दै
जब,
स्वतंत्र संग्रामीहरूका स्मरणमा
मौन धारण गर्छौं
तब बरबसै आँखाका कोषाहरू
रस्सिएर आउँछ,
भावी संततीहरूका
भावी संततीहरूका
सुखद भविष्यका निम्ति
आपनो अमूल्य जीवन
फाँसीको बलीवेदीमा
प्राण उत्सर्ग गर्नेहरूका जीवन गाथाले
छात्ती फुल्लिएर आउँछ
इष्ट देवताहरू समक्ष मात्रै
झुक्ने यो शिर
कसो-कसो ती स्वतंत्र संग्रामीहरू प्रति पनि
झुक्छ।

– कालचिनी आउट डिवीजन, पोस्ट कालचिनी जलपाइगढ़ी, (डुवर्स)-735219

❑❑❑

# स्वतंत्रता दिवस : एक अभिव्यक्ति

**अनुवाद : इंद्र बहादुर गुरूङ**

हरेक स्वतंत्रता दिवस के दिन
तिरंगा ध्वज हमें
सुख, समृद्धि और सुरक्षा का
विश्वास दिलाता है
देशभक्ति प्रतिप्रेरित कराती है।
इसी दिन जब हम
तिरंगा ध्वज का सम्मान करते हुए
स्वतंत्रता संग्रामियों की याद में
मौन धारण करते हैं
अनायास ही
आँखों में आँसू छलक आता है
अपनी भावी संततियों की खातिर
अपना अमूल्य जीवन
फाँसी की बलिवेदी पर उत्सर्ग
करने वालों की जीवन गाथा से
सीना फूल जाता है
ईष्ट देवताओं के प्रति झुकता ये सर
ईन शहीदों के प्रति
अनायास ही झुक जाता है।

– कालचिनी आउट डिवीजन, पोस्ट - कालचिनी जलपाइगढ़ी, (डुवर्स)-735217 ।

❑❑❑

# नबकलेवर

## मूल : वासुदेव सुनानी

तमे येउँठि कहिथिल
मुँ सेइठि हिँ ठिया होइछि
पिठि कुण्डेइबाकु इच्छा देहछि
हाइ मारिबाकु मन बलेइछि
अथच मुँ किछि करिनि,
किछि करिनि एइथिपाइँ ये,
तम आदेशकु शिरोधार्य करिछि
चुपचाप ठिआ होइछि
तमे प्रतिश्रुति देइछ
मोर कादुअ सरसर लड़बड़ पाद बदलेइ
हले जोतापाद देब,
पाइखाना सफा करूथिबा हात बदलेइ
हले अमृतखिआ हात खंजिब
शुखिला पाकस्थलीकु काटि फोपाड़ि
दानाभर्त्ति पाकस्थलीरिए
रोपण करिब
मोर दुर्गंधयुक्त चमड़ा बदलेइ
परस्ते अतरमखा चमड़ा लेपि देब
एथि सह
कथा शिखि न थिबा एक जिभ एवं
शुणि जाणि न थिबा हले कानकु
समूले बदलेइ
मोते सभ्यता सह सामिल करिब
ओ
गोबर सरसर मस्तिस्ककु
मूलोत्पारन करि एक उत्कृष्ट मस्तिष्करिए
स्थापन करिब
महाभाग!
तमे याहा सहजे कहुछ
मो पाइँ ताहा एक गहन कथा,
एबे सन्ध्या हेलाणि
एठि जलि उठिथिबा तेजस्वी निअन आलुअकु
मो आखि देखि सम्भालि पारुनि
देखा याउछि
ए प्रखर आलुअ खम्ब तले
बेंगमाने पेटपाटणा नेइ
बाहारि पड़िलेणि,
तांक खांइबा देखि मोते ईष्या हेउछि
भोक बढ़ि बढ़ि चालिछि
गोड़ नखरे
माटि ताड़िबार क्षमता थाइ बि
मुँ नीरबि याइछि
कारण
तम आदेशकु शिरोधार्य करि
येउँठि कहिथिल
सेइठि ही चुपचाप ठिआ होइछि
मुँ देखुछि
मो पाइँ काहिँ केते जागा बुलि
हंत संत हइराण हरकत होइ
हातरे बेद,
जिभरे मंत्र धरि धइँ सइँ
ठिआ होइछ
मोर प्रत्येकांग परिवर्तन पाइँ

# नवकलेवर

**अनुवाद : अजय कुमार पटनायक**

तुमने जिस जगह कहा था
मैं वहीं पर खड़ा हूँ।
पीठ खुजलाने की इच्छा हो रही है
जम्हाई लेने को मन कर रहा है
फिर भी मैंने कुछ नहीं किया।
इसलिए कुछ नहीं किया कि
मैंने तुम्हारे आदेश को शिरोधार्य माना
चुपचाप खड़ा रहा।
तुमने वचन दिया है
कीचड़ से लथपथ मेरे लड़खड़ाते पाँव के बदले
एक जोड़ा जूते वाले पाँव दोगे,
पाखाना साफ करने वाले हाथ बदल कर
एक जोड़ा अमृत खाने वाले हाथ लगा दोगे
सूखी पाकस्थली काट कर फेंक
एक दानाभरी पाकस्थली
रोपण करोगे,
मेरी बदबूदार चमड़ी उधेड़कर
एक परत इत्रमखा चमड़े का लेप लगा दोगे,
इसके साथ
बोलना न जानने वाली जीभ और
सुनना न जानने वाला एक जोड़ा कान को
जड़ से बदल कर
मुझे सभ्यता के साथ शामिल करोगे
और
गोबर से सराबोर दिमाग का
मूलोत्पाटन कर एक बेहतर दिमाग
स्थापन करोगे!
महाभाग!
तुम जो कुछ भी आसानी से कह जाते हो
वह मेरे लिए घनघोर व्यापार है,
अब शाम हो रही है
यहाँ अचानक रोशनी फेंकने वाले नियोन आलोक को
मेरी आँखें सह नहीं पातीं।
देखा जाता है
इस प्रखर आलोक-स्तंभ के नीचे
मेंढक अपने पेट के खातिर
निकल पड़े हैं,
उनका खाना देख मुझे ईर्ष्या हो रही है
भूख बढ़ती जा रही है।
पैरों के नाखूनों में
मिट्टी खोदने की ताकत होते हुए भी
मैं नीरव हूँ
क्योंकि
तुम्हारे आदेश को शिरोधार्य मान
तुमने जहाँ कहा था
वहीं पर खामोश खड़ा हूँ।
मैं देख रहा हूँ
मेरे लिए जाने कहाँ-कहाँ घूमकर
दिक्कत, हैरानी, परेशानी उठाकर
हाथ में वेद,
जीभ पर मंत्र लेकर हाँफते हुए
खड़े हो

अबशोष ये,
मुँ पाप-पुण्य, इहपर
बेद, नैबेद्य मोटे विश्वास करेनि,
विश्वासीबार स्पृहा बि नाइँ
मुँ जाणे
ए तत्विक शब्द सबु गोटिए गाटिए
बगिचा मध्यरे फलिथिबा सुस्वादु फल
याहाकु आहरण करि बिलासी व्यक्तिमाने
करिथान्ति मेर ह्रास,
वितरण करि सन्यासी माने धरिथान्ति
बैरागी बेश
मुँ किंतु एक निपट संसारी
हेबाकु चाहें
प्रारब्ध बुझिबार आवश्यकता नाइँ
नुआँ कलेवर लोड़ा नाइँ
मो साम्नारे ठिआ होइछि बर्तमान काल,
एक अंतरंग बंधु होई
कुतकुताउछि
पांचणरे कोंचि,
मो, जिभरे बसि
मोते इ कहुछि,
ए निअनबती तले
पेटपुरा पोक खउथिबा बेंग साम्नारे
मोते कंसाए बासी पखाल लोड़ा,
सलखेइ ठिआ हेबाकु
दि पाद दोरसा माटि ओ
काकर देहरू निस्तार पाइँ
शगड़े टाइलि खपर सह
बोझे झारि
तागिद करि कहुछि
योगाड़ कर
दे... दे.... जलदी दे.....
कते युगरू आँ मेलिछि मो पारि
मोर प्रिय अभाबर
एइ मलादेह ओझोकिला पेटर
कथा बुझु बुझु त
दिन सरि याउछि
पाप करिबाकु, किर्तन गाइबाकु
मंत्र जपिबाकु समय काइँ?
कहारिकि घृणा करेना
केवल छाड़िदेले छलना,
सेइ छलना टिककरू निस्तार कर महाभाग।
मुकुलेइ दिया ए ठिया पणरु
स्वर्ग, अमृत, पुण्य अप्सरा
मोर जमा लोड़ा नाइँ,
निअ, निअ
फेरेइ निअ
मुँ मंत्र उच्चारण करि पारिबिनि
सत कहुछि
मोर नबकलेबरर
आबश्यकता इँ नाइँ।

– कक्ष संख्या - 493-ए, कृषि भवन, मत्स्य पालन पशुपालन और डेयरी विभाग, नई दिल्ली-110001

❑❑❑

मेरे प्रत्येक अंग के बदलाव के लिए।
अफसोस कि
पाप-पुण्य, इह-पर
वेद, नैवेद्य पर मेरा एतबार नहीं
यकीन करने की इच्छा भी नहीं
मैं जानता हूँ
ये सारे तात्विक शब्द एक-एक करके
बगीचे के बीच फले सुस्वादु फल हैं
जिसका आहरण कर विलासी व्यक्ति
अपना मेद ह्रास करते हैं
वितरित कर सन्यासी लोग धरते हैं
वैरागी वेश।
लेकिन मैं एक निरा संसारी
रहना चाहता हूँ
न प्रारब्ध जानने की जरूरत है
न नए कलेवर का प्रयोजन,
मेरे सामने खड़ा है मेरा वर्तमान
एक अभिन्न मित्र बनकर
गुदगुदा रहा है
लकड़ी से कोंच कर,
मेरी जीभ पर बैठकर
मुझसे ही कह रहा है,
इस नियोग बत्ती के नीचे
भरपेट कीड़े खाते मेढ़क के सामने
मुझे कटोरा भर बासी भात चाहिए
सीधे खड़े होने को
दो कदम नरम मिट्टी और
सर्दी से बचने हेतु
बैलगाड़ी भर खप्पर के साथ
बोझ पर झाड़ी,
ताकीद कर रहा हूँ
जुगाड़ करो
दे....दे....जल्दी दे....
कई युगों से मेरा मुँह खुला है
मेरे प्रिय अभाव का
यह मरी देह और भूखे पेट की
बात समझते-समझते
दिन बीतते जा रहे हैं
पाप करने संकीर्तन मनाने
मंत्र जापने की फुर्सत कहाँ?
मैं किसी से नफरत नहीं करता
सिवाय छलना के,
उस छलना से मेरा निस्तार करो महाभाग!
मुक्त करो मुझे इन बेकार वायदों से
स्वर्ग, अमृत, पुण्य, अप्सरा
मुझे बिल्कुल नहीं चाहिए,
ले लो, ले लो
लौटा लो
मैं मंत्रोच्चार नहीं सकता
सच कह रहा हूँ।
मुझे नवकलेवर की जरूरत नहीं।

– 'तपोवनम्', प्लॉट नं. - 1032/2402, प्रगति नगर, यूनिट-8 भुवनेश्वर-751003 (ओडिशा)

❑❑❑

# मेहनोतिया

**मूल : किरण कुमारी हॉसदाक**

सिमराक खोनेम द!ड़ बाड़ाया।
ञिद! हो बाम तियार बाड़ाय।।
किस!ड़े रोड़ मित् ताला।।।
मोने बाय मेना ओड़ाक देला।।।।

चित् मेन! चित ऐम चेकाय।
ओकोय नोवा काथाम ला़याय।।
बित! भारी रे रेगेच आडी।।।
बाम पेरेच खान साडे।।।।

कुडयाक् खानेम होड़ कु रोड़ा।
खटुवा दो हुयुक् गी थोड़ा।।
चेकाते जहानाक् ऐम ओड़ा।।।
नोवा ध!रती रेन जुवान कोड़ा।।।।

बाग दो धारती रेयाक दस्तुर।
जिवेत् ताहेन-रेयाक् नोवा कुसुर।।
चित् हो नोडे बाम ञामा।।।
दाड़ी जुदी बायेम ऐमा।।।।

– ग्राम : भटोंढ़ा दुर्गीटोला, पो. काठोन, थाना- पोरेयाहाट, जिला- गोड्डा-814153

❑❑❑


भाषा ISSN 0523-1418

# हिम्मत

**अनुवाद : किरण कुमारी हॉसदाक**

मत दो उसे बैसाखी।
हिम्मत दो ओ मेरे साथी।।
जो करते चलने की कोशिश।
उसे मिलता सबका आशीष।।
उनके डर को तुम हटाओ।
आगे बढ़ने की राह दिखाओ।।
दिखाई दे जब उसे अंधेरा।
बता देना कैसे होगा सवेरा।।
कहना सुनहरा भविष्य होगा।
मेहनत जिसने भी किया होगा।।
थक जाए अगर आगे चलने से।
कहना प्रभु को परीक्षा लेनी है तुमसे।।
जब-जब तुम आगे बढ़ोगे।
पग-पग मे काँटा पाओगे।।
दर्द झेल कर बढ़ना आगे।
किस्मत तब कभी न भागे।।
बन बैसाखी उसे बढ़ाओ।
महापुरुष उसे बनाओ।।

– ग्राम : भटोंढ़ा दुर्गीटोला, पो. काठोन, थाना- पोरेयाहाट, जिला- गोड्डा-814153

❑❑❑

# प्रार्थना में लिखे गए शब्द

रीभा तिवारी

तुम्हें खोने का भय
और पाने की छटपटाहट
एक साथ मेरे भीतर
अपना-अपना आकार ग्रहण करते हैं
जहाँ भय का अनुभव
सागर की अतल
गहराइयों में ले जाकर
मुझे विलीन कर देता है।
वहीं दूसरी ओर
तुम्हें पाने की छटपटाहट में
बुनती हूँ मैं शब्दों के ताने-बाने
ये शब्द मेरे अंदर
अमृत की बूँदों से
उतरने लगते हैं।
मेरा आत्मविश्वास दृढ़ होने लगता है
मानो पूरब में सूरज उदित हुआ हो
और उसकी रोशनी की नर्म-नर्म किरणें
मेरे अस्तित्व से टकराकर
मेरे भीतर-बाहर के सारे
भय और भ्रम को
निस्तेज कर देती हैं
यही तो प्रेम की पराकाष्ठा है
जिसमें 'मैं' का बोध
'तुम' में बदल जाता है
जैसे प्रार्थना में
लिखे गए शब्द।

– एस. बी. आई. कॉलोनी से पहले, फजलगंज, सासाराम, रोहतास (बिहार)-821115

❑❑❑



भाषा ISSN 0523-1418

# होरीवाला गाँव कहाँ

राधेश्याम बंधु

गाँवों की चोपालों में
अब, होरीवाला गाँव कहाँ?
जहाँ बटोही थकन मिटाते,
अमराई की छाँव कहाँ?
सोनजुही की मेढ़ों पर अब
हँसते आज बबूल यहाँ,
'जींस' पहनकर ताने कसते,
अब कनेर के फूल यहाँ
पाहुन का संदेशा लाती,
वह कौवे की काँव कहाँ?
खेतों को मुखिया ने लूटा,
काका लूटे कचहरी में,
चारा बिना गाय भी भूखी,
प्यासी खड़ी दुपहरी में।
आँचल भर-भर फसलें देती,
मैया का वह ठाँव कहाँ?
जुम्मन-माधो सगे पड़ोसी,
लड़ते हैं नादानी में,
होली-ईद में अनबन है अब
गाँवों की परधानी में।
जो हर दुख में पार लगाती,
वह ममता की नाव कहाँ?
अब बाबा के नीम तले भी
जुड़ती भीड़ दलालों की,
मजहब की शतरंज बिछी है,
कुर्सी के रखवालों की।
शहर में आ गोबर भी बहका,
पड़ते जाने पाँव कहाँ?

– बी-3/ 163, यमुना विहार, दिल्ली-110053

❑❑❑

# शक्ति

**वर्षा सोलंकी**

आतंकित
रहते हो
सदैव,
खौफ
रहता है
सदैव,
ऊँचाईयाँ
मेरी
तुम्हें
छू न जाए,
दिल में
घृणा लिए
रहते हो
सदैव,
जताते हो
पौरुषी अधिकार
सदैव,
कामयाबी
मेरी
तुम्हें
नीचा न कर दे
दिखाते हो
आडंबर
सदैव,
और
कहते
फिरते
हो
नारी
शक्ति
है।

– डी-4, आयकर कॉलोनी, मजुरा गेट, सूरत, गुजरात

❑❑❑

# हिंदी वाक्य विज्ञान

प्रो. राजनाथ भट्ट

"महाभाष्य व्याकरण का महाकाव्य है"। (पृष्ठ 344)

वाक्य बोध का विषय है, जिसे हम समझते अथवा नहीं समझते हैं। शब्द स्मृति का विषय है जिसे हम जानते अथवा नहीं जानते हैं। भाषा व्यवहार में वाक्य भाषा की लघुतम इकाई है। इसीलिए 'वाक्यविस्फोट' वाक्य को अखंड मानता है।

वाक्य के अर्थ के सारे संकेत बाह्य संरचना में ही विद्यमान रहते हैं, चाम्सकी द्वारा प्रतिपादित 'आंतरिक संरचना' उच्चारण/श्रवण/लेखन की व्यवस्था नहीं है। लेखक का मानना है "आतंरिक एवं बाह्य संरचना की कल्पना किए बिना भी भाषा के सभी वाक्यों का वर्णन किया जा सकता है।" (पृष्ठ 3) "शब्द-वर्ग भेद के आधार पर प्रसिद्ध वाक्य द्वय को विश्लेषित किया जा सकता है।" एक में ये क्रियार्थक-संज्ञा है और दूसरे में कृदंत-विशेषण। इसी प्रकार easy और eager कर्मवाचक और वाक्य-भेद विशेषण हैं स्पष्ट है कि बाह्य संरचना में शब्द-भेद के विश्लेषण से ऐसे वाक्य-भेद व्याख्यायित हो सकते हैं। (पृष्ठ 1-4)

चतुर्भुज सहाय द्वारा प्रतिपादित 'हिंदी वाक्यविज्ञान' शीर्षित पुस्तक पाँच अध्यायों में विभक्त है: वाक्य, वाक्य का मूलार्थ, वाक्य सांचे, वाक्य के प्रकार्य तथा पाठ। प्रथम अध्याय में हिंदी वाक्य को परिभाषित किया गया है; दूसरे अध्याय में मूलार्थ की दृष्टि से वाक्यों को परखा गया है। तीसरे अध्याय में हिंदी वाक्य में संभावित साँचों की चर्चा है; चौथा अध्याय वाक्य के प्रकार्य अर्थात् वाक्य का प्रयोजन (सूचना देना, प्रश्न पूछना, आज्ञा देना) को विस्तार से व्याख्यायित करता है। पाँचवें अध्याय में पाठ को व्याख्यायित कर उसकी विशेषताओं, सामाजिक सरोकारों पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है; इसी अध्याय में महावाक्य को सोदाहरण परिभाषित, परिलक्षित किया गया है। पुस्तक के विभिन्न अध्यायों का सार निम्नवत है-

वाक्य में प्रयुक्त 'पदों' में आकांक्षा, योग्यता (अन्वय, अन्विति, अधिशासन) एवं सन्निधि गुणों का होना अपेक्षित है। पुस्तक में कैयट, पाणिनी, पतंजलि, कात्यायन आदि व्याकरण-आचार्यों द्वारा दी गई परिभाषाओं से सिद्ध किया गया है कि "निराकांक्ष वाक्य ही अर्थ की दृष्टि से पूर्ण होता है।"

आख्यात अर्थात् समापिका क्रिया या तिङन्त-पद वाक्य के विशेष्य हैं। संरचना की दृष्टि में वाक्य सरल, मिश्र एवं संयुक्त (जटिल) होते हैं। हिंदी वाक्य में शब्दों का सामान्य क्रम इस प्रकार है: कर्ता-पद+कर्म-पद+ क्रिया-पद। अनुतान एवं बलाघात के लगाने से वाक्य के प्रकारात्मक अर्थ की अभिव्यक्ति होती है। वाक्य सूचनाप्रद, प्रश्नवाचक अथवा आश्चर्य को अभिव्यक्त करता है।

वाक्य के अर्थ को एक साथ तीन स्तरों से विश्लेषित किया गया है: मूलार्थ, प्रकार्यार्थ और पाठार्थ। वाक्य की रचना में तीन प्रमुख तत्व रहते हैं: शब्द-रूप, शब्द-क्रम और कंठ-विकार (अनुतान, बलाघात, स्वराघात/तान)।

---

हिंदी वाक्यविज्ञान/ चतुर्भुज सहाय/ युक्ति प्रकाशन, दिल्ली/ प्रकाशन वर्ष : 2018/ पृ. : 369/ मूल्य : ₹800/-

हिंदी संज्ञा पदबंध में पदों का सामान्य क्रम विशेषण + विशेष्य है (गरम चाय); क्रिया पदबंध में सहायक क्रिया मुख्य क्रिया के बाद आती है (हँसने लगा); विशेषण पदबंध में विशेषण शीर्ष स्थान पर आता है (चाय गरम); क्रिया-विशेषण पदबंध में मुख्य रूप से स्थानवाचक और कालवाचक क्रियाविशेषणों का वर्णन होता है (अगले सप्ताह, गुरुवार, शाम 6 बजे) जिन का क्रम विस्तार से संकोच की ओर होता है। (पृष्ठ 273-278)

हिंदी में कारक-संबंधों को चिह्नित करने के लिए कारक-विभक्ति का प्रयोग केवल व्यक्तिवाचक-सर्वनामों के साथ होता है: (यथा मैं > मेर > मुझ > तू > तेर > तुझ) "वास्तव में हिंदी में कारकों का प्रथम विभाजन सरल एवं तिर्यक कोटियों में करना अधिक उपयुक्त है। कर्ता और कर्म पहली कोटि में और शेष कारक दूसरी कोटि में आएँगे।" (पृष्ठ 145)

संज्ञा पदों के साथ पर्सगों का उपयोग होता है। (अंग्रेजी में पूर्व-सर्ग रहते हैं जो संज्ञा-पद से पूर्व आते हैं।) संबंधो कारक-संबंधों की अभिव्यक्ति 'पर्सगों' की गौण भूमिका है। प्राथमिक नहीं। हिंदी में न केवल एक परसर्ग एक से अधिक कारक-संबंधों को दर्शाने में सक्षम है। प्रत्युत एक ही कारक संबंध एक से अधिक पर्सगों द्वारा व्यक्त होता है। 'ने' परसर्ग संज्ञा के बाद ऐसे वाक्य में कर्ता को चिह्नित करता है जब क्रिया सकर्मक, भूतकालिक कृदंत (क्रिया-रूप) हो-- (लड़के ने सेब खाया) कुछ अकर्मक क्रियाओं के साथ 'ने' का उपयोग एच्छिक है, अनिवार्य नहीं- (लड़के ने छींका/ लड़का छींका; लड़का दौड़ा/ लड़के ने दौड़ा)। 'ने' किसी अन्य कारक को चिह्नित नहीं करता है। 'को' परसर्ग कर्ता, संप्रदान और 'स्वामी' तीनों के लिए प्रयुक्त है। रमेश को घर जाना है (कर्ता); रमेश ने उमेश को पुस्तक दी (संप्रदान); रमेश को बेटी हुई (स्वामी)। 'से' परसर्ग कर्ता और करण कारकों को अभिव्यक्त करता है। रमेश, माँ से गणित सीख रहा है (कर्ता); माँ चाकू से सेब काट रहीं हैं (करण)। 'को' परसर्ग कर्ता, कर्म, संप्रदान, अधिकरण, अनुभावक, भोक्ता, ज्ञाता कारक-संबंधों को चिह्नित करता है (पृष्ठ:14)। सुरेश को यहाँ रुकना चाहिए (कर्ता); सिपाही ने चोर को पकड़ लिया (कर्म); महेश ने बच्चों को मिठाई खिलाई (संप्रदान); लड़के को गोली लगी (अधिकरण)। (यहाँ ध्यान देने वाला तथ्य यह है कि चेतन अधिकरण के साथ 'को' आता है। अचेतन अधिकरण के साथ 'में' या 'पर' आता है (दीवार में गोली लगी))।

'को' निश्चय-वाचक, चेतन-धर्म का सूचक भी है। भाववाचक एवं जातिवाचक संज्ञा-पदों की तुलना में व्यक्तिवाचक (चेतन और मानव) संज्ञा-पद अधिक निश्चय-वाचक होते हैं। (अनुराधा को स्कूल भेजिए) (पृष्ठ: 20)। संज्ञा विशिष्ट अथवा अविशिष्ट होती हैं, ऐसे ही क्रिया स्थूल अथवा सूक्ष्म हो सकती है। (पृष्ठ 21-22) 'को' परसर्ग का उपयोग विशिष्ट संज्ञा और स्थूल क्रिया के साथ अधिक किया जाता है। 'को' और 'से' परसर्ग अलग-अलग वर्गों के विशेषणों के साथ जुड़ते हैं: .... को इच्छुक/... से दुखी। संप्रदान (को) और अपादान (से) कारकों को दर्शाने के लिए भी अलग-अलग क्रियाएँ प्रयुक्त हैं: बताना/पूछना। संप्रदान यदि लाभार्थी है, तो 'के लिए' प्रयुक्त होगा। 'से' परसर्ग कर्ता, करण, अपादान, गौण-कर्म, गंतव्य/स्थान को चिह्नित करता है। (पृष्ठ 35-40) 'में' 'पर', 'के' अधिकरण कारक के चिह्न हैं। (पृष्ठ 40-50) 'में' नकारात्मक शब्दों के साथ और 'का/की' सकारात्मक शब्दों के साथ प्रयुक्त रहते हैं: ...की संभावना/ ... में संदेह।

'का' विकारी परसर्ग है। (का > की > के) जो कारकेतर संबंधों का सूचक है (क्रियाकारक पूर्व: मोहन का पुत्र, चाँदी की अंगूठी, आनंद का सागर), गौण रूप से कारक संबंधों को चिह्नित करता है: ... यात्री के रुपए छीन लिए/ नहाने की इच्छा हो रही/आम का खाना। (पृष्ठ 50-59) "परसर्ग के अलावा पदों में होने वाले रूप-विकार से भी वाक्य में पदों का संबंध सूचित होता है"। (पृष्ठ 63) क्रिया कर्तृवाच्य (कर्ता का वाचक), कर्मवाच्य (कर्म का वाचक) अथवा भाववाच्य (अपना वाचक) रूपों में हो सकता है: .... आम तोड़ा (कर्तृवाच्च), आम तोड़ा गया (कर्मवाच्य), तोड़ा जाता... (भाववाच्य)।

संज्ञा पद के लिंग, वचन, पुरुष तत्वों की अभिव्यक्ति क्रिया, विशेषण तथा (कभी-कभी) क्रिया-विशेषण के रूप-विकार में भी होती है, इस प्रक्रिया को अन्विति

कहते हैं, लड़के भूखे हैं; लड़के को भूख लगी है; दौड़ते हुए लड़के/दौड़ता हुआ लड़का। अन्विति में कर्ता-पद और क्रिया-पद में समान लिग, पुरुष वचन होते हैं। अधिशासन में एक पद स्वयं अप्रभावित रहता है, परंतु अन्य पद में विकार का हेतु बनता है: कोई चिंता की.../ तुम पर.../ जाने को आतुर....। (पृष्ठ 71)

पाश्चात्य वैयाकरणों के अनुसार, क्रिया तीन प्रकार की होती है: अकर्मक, सकर्मक और द्विकर्मक। उदाहरणार्थ : दौड़ना, खाना, देना। अकर्मक क्रिया को वाक्य में प्रयोग के लिए केवल कर्ता-पद की आवश्यकता है- बच्चा दौड़ा; सकर्मक क्रिया के लिए कर्ता और कर्म पद आवश्यक है- बच्चा खाना खा रहा है; द्विकर्मक क्रिया के लिए कर्ता, मुख्य कर्म और गौण कर्म दरकार रहते हैं- रमेश बेटे को पुस्तक दे रहा है। इन क्रियाओं के साथ अन्य-पद/घटक ऐच्छिक होते हैं। जैसे: बच्चा मैदान में दौड़ा; बच्चा घर पर चम्मच से खाना खा रहा है; रमेश अपने एक दोस्त के बेटे को स्कूल में उपहार स्वरूप एक पुस्तक दे रहा है। परसर्ग-सहित प्रयुक्त होने वाले कारकों में करण, संप्रदान, अपादान, अधिकरण प्रमुख हैं। (पृष्ठ 76)

गौण-कर्म को हिंदी में तिर्यक पद या परसर्गयुक्त पद कहना अधिक समीचीन होगा, इसके अंतर्गत वाक्य में प्रयुक्त पदों के अनुसार संप्रदान, स्थान, भोक्ता, करण, अपादान आता है। (पृष्ठ 79) भाषाविदों के सर्वेक्षण के अनुसार कारक निम्न उत्तराधिकार क्रम में रखे जा सकते हैं: कर्ता > कर्म > गौण कर्म > तिर्यक पद > स्वामी > तुलना पद। (पृष्ठ 77) हिंदी वाक्यों में कर्ता और कर्म के अतिरिक्त जब भी तीसरा पद प्रयुक्त होता है। वह तिर्यक कारक की ही कोटि का होता है।

हिंदी में तीन वाक्य साँचों की कल्पना की जा सकती है: 1. कर्ता + क्रिया; 2. कर्ता + कर्म + क्रिया; 3. कर्ता + गौण कर्म + मुख्य कर्म + क्रिया। इन साँचों के अंतर्गत ही हिंदी के अनेक वाक्य-प्रकार विश्लेषित किए जा सकते हैं: इस वर्ष आम के पेड़ों में भरपूर आम लगे हैं। मोहन ने रमेश के सारे कच्चे आम खाए। मोहन ने दुकान से खरीद कर श्याम को मिठाई दी। व्युत्पन्न वाक्य-साँचों में प्रेरणार्थक और अनुमतिबोधक वाक्य-साँचों में प्रयुक्त प्रत्ययों की चर्चा इसी अध्याय में विस्तार से की गई है। (पृष्ठ 155-168) इस अध्याय में क्रियाओं को वाक्य में प्रयोग के आधार पर वर्गों में बांटा गया है जो गहन शोध और सुचिंतित प्रस्तुति को स्पष्ट दर्शाता हैं अव्यवहारिक वाक्यों (कुँए में कूद पड़ो) का निषेध भी विश्लेषित किया गया है।

वाक्य के चार प्रकार्य अथवा प्रयोजन बताए गए हैं। (पृष्ठ 169) - कथन-वाक्य; प्रश्नवाचक वाक्य; विधि एवं निषेध वाक्य; विस्मयादिबोधक वाक्य कथनात्मक वाक्य श्रोता को नई जानकारी देता है जो सकारात्मक भी हो सकती है, नकारात्मक भी-राकेश घर जा रहा है राकेश घर नहीं जा रहा है। 'न' 'नहीं' निपातों की तरह अर्थ के द्योतक हैं, वाचक नहीं। ये व्याकरणिक शब्द हैं, जो अन्य शब्दों के संपर्क में ही अर्थवान होते हैं। (पृष्ठ 179) नकारात्मक निपात के दो मुख्य भेद बताए गए हैं। प्रसज्य प्रतिषेद (नहीं, घर में घड़ा है) एवं पर्युदास (वह धनवान/चरित्रवान नहीं है, निर्धन/चरित्रहीन है)। (पृष्ठ 180) "नकार और नकार मिलकर कभी एक दूसरे को काट देते हैं तो कभी एक दूसरे को बल प्रदान करते है। (पृष्ठ 197-198) अनिश्चयवाचक सर्वनामों और क्रियाविशेषणों की पुनरुक्ति में 'न' संयोजक का कार्य करता है (कभी-न-कभी)। 'न' हल्का तथा 'नहीं' भारी (बलात्मक) नकारात्मक निपात हैं। (पृष्ठ 202-206) प्रश्न सत्य अथवा असत्य नहीं होता; प्रश्न का उत्तर इसमें व्यक्त वक्तृत्व को सत्य या असत्य ठहरा सकता है। प्रश्नवाचक वाक्यों की अभिव्यक्ति में प्रश्नवाचक सर्वनाम, प्रश्नवाचक क्रियाविशेषण तथा अनुतान प्रमुख साधन हैं। हिंदी के सभी प्रश्नवाचक शब्द 'क' से आरंभ आते हैं (क्या, कब, क्यों, कहाँ, कैसे आदि) प्रश्न दो प्रकार के होते हैं: 1. हाँ-नहीं प्रश्न 2. क-प्रश्न। 'हाँ-नहीं' प्रश्न का उत्तर 'हाँ' या 'नहीं' में दिया जा सकता है। (प्रश्न : (क्या) आप बनारस में रहते हैं? उत्तर: हाँ/नहीं)। वाक्य में प्रश्नवाचक 'क्या' ऐच्छिक घटक है, इसलिए कोष्टकों में दिया गया है। इस प्रश्न का उच्चारण आरोही अनुतान में किया जाता है। (पृष्ठ 209) क-प्रश्न का उत्तर वर्णनात्मक होता है। (प्रश्न: कहाँ जा रहे हो? उत्तर : मथुरा (जा रहा हूँ)। (कोष्टकों में दिया अंश ऐच्छिक है)। यह प्रश्न अवरोही अनुतान में उच्चरित होता है। भाषाविदों ने प्रश्न को अन्य आधारों पर भी वर्गीकृत किया है। विकल्पों

की संख्या; सामान्य- औपचारिक; प्रश्न का विषय। कुछ क-प्रश्नवाचक शब्द संज्ञा और विशेषण से संबंधित [मनुष्य वर्ग (कौन), मनुष्येतर/अप्रानी (क्या), गुणवाचक (कैसा), परिमाणवाचक/संख्यावाचक (कितना)] रहते हैं, तथा अन्य प्रश्नवाचक शब्द स्थान, काल, रीति, कारण और प्रयोजन से संबंधित रहते हैं (कहाँ, कब, कैसे, क्यों, किसलिए)। प्रश्नवाचक गौण उपवाक्य स्वरूप से प्रश्नवाचक होते हुए भी प्रश्नवाचक नहीं होता (वह जानता है कि कौन घर जा रहा है)। (पृष्ठ 230) प्रश्नवाचक और आज्ञार्थक वाक्य (चला, जा!), दोनों श्रोता को क्रिया करने में प्रवृत्त करते हैं। आज्ञार्थक वाक्यों को चार वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। (पृष्ठ 246-260) प्रश्न और विस्मय, दोनों का अनुतान आरोही होता है। (पृष्ठ 236) विस्मय में वक्ता अपने भावों को 'उच्च आरोही अनुतान' से अभिव्यक्त करता है। हिंदी के कुछ विस्मयादिबोधक शब्द निम्नवत हैं: छि:, शाबाश, वाह आदि।

वाक्य के दो प्रमुख अवयव होते हैं। उद्देश्य तथा विधेय, उद्देश्य विषय या टॉपिक है, और विधेय उसका वर्णन सामान्यतत: उद्देश्य 'पुराना' अंश (पूर्व ज्ञान) और विधेय नया अंश (नई जानकारी) होता है। सामान्यत: पाठ में पूर्व-वाक्य नए वाक्य का उद्देश्य (टॉपिक) बनता है। पाठ महावाक्य के रूप में भी हो सकता है। महावाक्य कविता, कहानी, निबंध, उपन्यास, नाटक, प्रबंध, आलेख आदि रूपों में प्रस्तुत होता है। पाठ के वाक्य एक-दूसरे से संबंद्ध होना अनिवार्य है, असंबद्ध वाक्य का अलग-अलग वाक्य के रूप में विश्लेषित हो सकते हैं, पाठ के रूप में नहीं।

इस ग्रंथ में हिंदी वाक्यों और क्रिया-रूपों का बाहुल्य है। इस सामग्री का हिंदी भाषा शिक्षण में सहज ही उपयोग किया जा सकता है तथा क्रियाओं के सभी विश्लेषित वर्गों/कोटियों का 'हिंदी क्रिया-कोश' तैयार किया जा सकता है।

पृष्ठ संख्या 113 और 120 सही प्रकार से छपे हुए नहीं हैं, इन पृष्ठों को अगले संस्करण में सही प्रकार से छापने की अपेक्षा है। लेखक द्वारा प्रतिपादित 'हिंदी पद-विज्ञान' 2007 ई. में छप चुके है, उसका अध्ययन प्रस्तुत पुस्तक से पूर्व करने से ग्रंथ के कई अंश स्वत: स्पष्ट हो जाएँगे।

पृष्ठ 71 का पहला पैरा हटाना सही रहेगा क्योंकि उसमें पर्सर्गों को कारक-विभक्तियों के रूप में बतलाने का अभाषावैज्ञानिक वाक्य दिया गया है। इस प्रकार के उपयोग अशुद्ध भ्रांतियों को शक्ति प्रदान कर रूढ़ बना देते हैं। ग्रंथ में यह बतलाने की गहन आवश्यकता है कि परसर्ग मूलत: संज्ञा/सर्वनाम पदों के बाद लगने वाले चिह्न हैं, कारक विभक्तियाँ नहीं, कारक संबंद्ध दर्शाना उनका प्राथमिक कार्य नहीं है। वे मूल रूप से व्याकरणिक अवयव हैं। इसीलिए कारक-संबंधों और पर्सर्गों में परस्पर एक-एक का समन्वय नहीं है।

यह ग्रंथ हिंदी भाषाविदों, वैयाकरणों, भाषा शिक्षकों तथा अनुसंधानकर्ताओं के लिए लाभप्रद है। इसे सभी हिंदी विभागों में अनिवार्य रूप से पाठ्यपुस्तक के रूप में रखा जाना चाहिए।

– भाषा विज्ञान विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी- 221005

❑❑❑

# तेरे चरणों में

**डॉ. शकुंतला कालरा**

एकांकी आधुनिक युग की देन है जो भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में वर्णित प्रहसन और नाटिका का आधुनिक रूप है। एक अंक वाली यह विद्या रंगमंच के उपयुक्त है, इसमें न दृश्यों की भरमार होती है और न साज-सज्जा की विशेष कठिनाई ही। इसलिए स्कूल, कॉलेज तथा अन्य सामाजिक संस्थाओं द्वारा विशेष अवसरों पर बड़े नाटकों की अपेक्षा एकांकी ही अधिक खेले जाते हैं। सहज प्रस्तुति के कारण एकांकी नाटक की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय विधा है। डॉ. सुधा शर्मा 'पुष्प' ने बच्चों से संपर्क स्थापित कर उन्हें अपना संदेश संप्रेषित करने के लिए इसी विधा को अपनाया है। उन्होंने कथानक और पात्र जुटाने के लिए इसी जीवन की साधारण भूमि को आधार बनाया है। वे इसके लिए कल्पनालोक में नहीं भटकीं। इसके पात्र स्वयं बच्चे हैं। उनके सहपाठी, मित्र, अभिभावक, माता-पिता, शिक्षक हैं। आवश्यकतानुसार वे पात्र भी हैं जिनसे आपका रोज़ वास्ता पड़ता है। एकांकियों का कथ्य भी परोक्ष अथवा अपरोक्ष रूप से बच्चों से जुड़ा है। साथ ही, बच्चों के लिए विशेष संदेश संप्रेषित करता है जो शिक्षाप्रद है, किंतु उनमें संदेश ध्वनित रहता है। इस संग्रह का प्रमुख उद्देश्य है- बच्चों में उत्तम संस्कारों का रोपन।

इक्कीसवीं सदी के विगत कुछ वर्षों में समय, समाज और संवेदना के स्वरूप में आए हुए बदलावों को आसानी से देखा-परखा-समझा और महसूस किया जा सकता है। मीडिया द्वारा परोसी गई शानो-शौकत, चकाचौंध की दुनिया में पुराने 'सादा जीवन उच्च विचार' के मूल्य सपने सरीखे लगते हैं। जो कुछ बदल रहा है, उसमें हम जीने के लिए अभिशप्त हैं। संयुक्त परिवार के टूटने और बिखरने से हमारी संवेदनाएँ शुष्क हो गई हैं। भौतिक सुखों की ओर भागता मनुष्य आंतरिक सुख-शांति को गंवाता जा रहा है। आज बाजारवाद और व्यवसायिकता के दबाव के कारण मानवीय रिश्तों का निर्वाह करना कठिन होता जा रहा है। दूसरों के सुख-दुख से हम निर्लिप्त होते जा रहे हैं। आवागमन की सुविधाएँ चाहे बढ़ती जा रही हैं पर नज़दीकियाँ घटती जा रही हैं। 'वसुधैवकुटुंबकम्' में दुनियाँ सिमटी है लेकिन प्रेम और संवेदना की दूरियाँ बढ़ी हैं।

लेखिका स्वयं अध्यापन से जुड़ी हैं। वे जानती हैं कि बालावस्था ज्ञानार्जन और जीवन-निर्माण दोनों की अवस्था है। विद्यालयों में जहाँ आज कैरियरोन्मुखी बच्चों को धनवान, सत्तावान, समृद्धिवान बनने की कला सिखाई जाती है, वहाँ सुधा जी ने व्यक्तित्व-विकास के साथ आत्मिक विकास में संतुलन बनाने के गुण भी सिखाए हैं। बच्चे हँसते-खेलते और बातचीत करते हुए परस्पर संवाद करते हुए जीने की कला सीख जाएँगे। सुधा जी ने एक अध्यापक के नाते अपनी एकांकियों के माध्यम से बच्चों को, हमारी किशोर पीढ़ी को नैतिक मूल्य प्रदान करने का स्तुत्य प्रयास किया है। सद्गुणों की प्रेरणा दी है। गुरु संस्कारित कर सकता है शिष्य को। स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने शिष्य तैयार किया- विवेकानंद।

---

तेरे चरणों में(बाल एकांकी संग्रह)/ डॉ. सुधा शर्मा 'पुष्प'/ सूर्य भारती प्रकाशन, 2596, नई सड़क, दिल्ली-6/ प्रकाशन वर्ष : 2018 (प्रथम संस्करण)/ पृष्ठ : 127/ मूल्य : ₹300/-

विवेकानंद का आदर्श पूरे देश के छात्रों को अनुप्राणित किया करता था। विवेकानंद ने कहा कि मनुष्य-निर्माण ही मेरे जीवन का उद्देश्य है। छात्र-समुदाय स्वामी जी की रचनाओं और व्याख्यानों से जैसा प्रभावित होता था, वैसा किसी और से नहीं। सुधा जी की ये एकांकियाँ भी सचमुच शिष्य तैयार करने की पूरी सामर्थ्य रखती हैं।

संग्रह में कुल 11 एकांकी हैं, जिनमें विषय वैविध्य भी है और शिल्प का सौंदर्य भी। मनोरंजन बालसाहित्य का प्रथम धर्म है। लेखिका ने खेल-खेल में उन्हें मूल्यों की थाती सौंपी है। मर्यादित व्यवहार, शालीन आचरण का वे कहीं पाठ पढ़ाती नज़र नहीं आतीं, वरन् एकांकियों के पात्र ही उनके आदर्श बन जाते हैं और उनका अनुकरण उनका जीवन लक्ष्य।

संग्रह की प्रथम एकांकी 'शुभारंभ' है, जो भारतीय कालगणना की वैज्ञानिकता सिद्ध करती है। इसमें लेखिका ने अत्यंत रोचक तरीके से कालगणना की जानकारी दी है। भारतीय कालगणना विश्व में प्राचीनतम कालगणना है। इस एकांकी में लेखिका ने बताया है कि दुनिया का प्राचीनतम कैलेंडर भारतीय कैलेंडर है, जिसके अनुसार- चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को नववर्ष का आरंभ माना जाता है। इसी दिन ब्रह्मा ने सृष्टि आरंभ की थी। राजा विक्रमादित्य द्वारा नए संवत का आरंभ भी इसी दिन हुआ था। यह भारतीय कैलेंडर वैदिक काल में हमारे ऋषि-मुनियों ने बनाया था जो ऋतुओं और नक्षत्रों के आधार पर बनाया गया था। जिसके अनुसार उसी तिथि पर ही हमारे पर्व-त्योहार मनाए जाते हैं। जैसे रक्षाबंधन का पर्व श्रावण की पूर्णिमा को और दीपावली कार्तिक की अमावस को मनाई जाती है।

दूसरी एकांकी 'दिल का रिश्ता' है, जिसमें विभिन्न पौराणिक आख्यानों के द्वारा मित्रता के आदर्श को प्रस्तुत किया है। तीसरी एकांकी 'आरोप नहीं समाधान' पर्यावरण की समस्याओं और समाधान पर केंद्रित है। 'कर्म ही धर्म' है' में कर्म के प्रति जागरूकता का संदेश है तो 'भगाओ बाबा, बुलाओ बाबा' एकांकी में स्व-अर्थ जीने वाले वृद्ध व्यक्तियों को बच्चों के सद्व्यवहार द्वारा स्वार्थ का परित्याग कर दूसरों के लिए जीना सिखाया है। इसी तरह के सद्गुणों को संप्रेषित करती अगली एकांकी है- 'मिल बांटकर' जो उदारचित बनने की प्रेरणा देती है।

'पहले घर से, फिर जग से' में बताया है कि हर आदर्श आचरण का आरंभ घर से होना चाहिए। लोग बाहर अलग जीवन जीते हैं और घर में अलग। दोहरे व्यक्तित्व वाले ऐसे व्यक्तियों की कथनी और करनी में सदा अंतर रहता है। दूसरों को उपदेश देने से पहले अपने आचरण में उन्हें उतारना चाहिए। इसी तरह 'क्या नहीं कैसा' 'सामान्य से विशेष' एकांकी भी बच्चों में नैतिक गुणों की पूंजी चुपके-चुपके प्रदान करती है। बालकों को रचनात्मक दिशा देती है।

संग्रह की प्रथम व शीर्षक एकांकी है - 'तेरे चरणों में'। आज वृद्धावस्था में माता-पिता को उपेक्षित करना या बेसहारा छोड़ देना समाज की बड़ी समस्या बनकर उभर रहा है। सुधा जी की एकांकी में इसी पीड़ा को अभिव्यक्ति मिली है। इसके संवाद जब बालक पढ़ता है या बोलता है, तो यकीन मानिए, वे कालांतर में बच्चों के संकल्प बन जाते हैं कि वे अपने माता-पिता के साथ हरगिज, ऐसा नहीं होने देंगे। भोजन-पानी और हवा की तरह संस्कार-ग्रहण भी मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकता है। ये संस्कार बालपन से ही दिए जाएँ, तो बालक के रक्त में रच-बस जाते हैं और परिणामतः एक अनुशासित नागरिक का निर्माण अनायास ही हो जाता है। इसे आप समाज-सेवा का नाम दे सकते हैं। समाज-सेवा से तात्पर्य अस्पताल या स्कूल खोलना नहीं और न ही लंबी-लंबी डोनेशन देना है - बल्कि शिक्षा के क्षेत्र में राष्ट्र की भावी पीढ़ी का चरित्र निर्माण है। यह कार्य ईश्वर किसी-किसी से कराता है, जिस पर उसकी कृपा होती है, उसे इस कृपा का आभास होता है और फिर वह ईश्वरीय कार्य में प्रवृत्त होता है। उसे साधन, अवसर, परिवेश, अनुकूलता सब मिलने लगते हैं - यह कृपा डॉ. सुधा शर्मा 'पुष्प' जी पर देखी जा सकती है। सुधा जी को बच्चों को पढ़ाने का कार्य कुदरत ने दिया है और उन्हें संस्कारित करने का भी। इन एकांकियों का मंचन एक विद्यालय में नहीं, देश के कई विद्यालयों में होगा और देश की भावी पीढ़ी संस्कारित होगी।

मनुष्य अनुकरण प्रिय है, विशेष रूप से यह प्रवृत्ति बालकों में सर्वाधिक होती है। नाटक करते वक्त बच्चे जो संवाद बोलते हैं - उसे पहले कंठस्थ करते हैं और कंठस्थ करते-करते वे कब उनके विचार बन जाते

हैं, कब विचार उनमें संस्कार बीज रूप में डल जाते हैं, इसका पता स्वयं बालकों को भी नहीं चलता। समय पाकर वे बीज अंकुरित होते हैं और पल्लवित-पुष्पित भी।

इन एकांकियों को पढ़ते हुए यह बिल्कुल स्पष्ट होता गया कि इनमें बालकों की भावनाएँ, बालकों की चिंताएँ, बालकों के चाव, उनकी समस्याएँ, उनके समाधान, उनकी जिज्ञासाएँ, उनके उत्तर सब विद्यमान हैं। इनमें एक टीचर और साहित्यकार दोनों की दोहरी जिम्मेदारी निभाते हुए सुधा जी ने नई पौध को संस्कारपूर्ण पनपने पर पूरा ध्यान केंद्रित किया है। बालकेंद्रित इन एकांकियों में बच्चों को बड़े मनोवैज्ञानिक ढंग से अत्यंत व्यावहारिक शिक्षा दी है जो उपदेश की भाषा में न होकर मर्म को छूने वाली है। अंदर एक मंथन की प्रक्रिया करने वाली है। सही-गलत का विवेक प्रदान करने वाली है। मूल्यों से कटती जा रही वर्तमान पीढ़ी को मूल्यों से जोड़ने वाली है। यह संस्कार कितने मूल्यवान है और वर्तमान में इनकी कितनी आवश्यकता है - यह निर्विवाद है।

समग्रतः सुधा जी की सोद्देश्य लिखी एकांकियों में कथानक-चयन का कार्य उनकी सूझबूझ का परिचायक है। हर एकांकी पाठक को उद्वेलित करती है। सामयिक एवं शाश्वत सूझबूझ प्रश्नों के उत्तर तलाशती है। आधुनिक बोध एवं आज के जीवन की यथार्थ समस्याओं से जुड़े कथानक संकलन की प्रभविष्णुता बढ़ाते हैं। अनुभवपरक विचारों की प्रौढ़ता, हर विषय की सूक्ष्म जानकारी एवं बाल-समाज के लिए संदेश-संप्रेषण इन एकांकियों की विशेषता है।

बालोपयोगी रोचक विषयों पर लिखे इन एकांकियों का शिल्प भी उपयुक्त है। एकांकी के प्रमुख तत्व चरित्र-चित्रण, संवाद, देशकाल, भाषा-उद्देश्य, संकलनत्रय का समुचित निर्वाह हुआ है। इन एकांकियों में कौतुहल, कल्पनाशीलता, मनोविज्ञान एवं मनोरंजन की भरपूर सामग्री के साथ भाषा की सरलता का गुण भी विद्यमान है। सुधा जी सजग एकांकीकार हैं। उन्होंने मंच की साज-सज्जा के यथास्थान निर्देश दिए हैं जिस कारण इन्हें आसानी से अभिनीत किया जा सकता है। लेखिका निरंतर सफल एकांकियों की रचना कर इस विधा के विकास में सहायक होंगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

- एन. डी.-57, पीतमपुरा, दिल्ली-110034

❑❑❑

# सामाजिक एवं पारिवारिक परिवेश का दर्पण : एक सच ऐसा भी

आशा प्रसाद

'कहानी' से कहानी की निर्मिति के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 'जो कहती है वह कहानी है।' अर्थात् कहानी कुछ कहती है। मनुष्य ने जब से बोलना सीखा तब से उसने कहना प्रारंभ किया। इस प्रकार कहानी की शुरुआत तब से हुई जब से मनुष्य में बोलने की कला की सृष्टि हुई। तब से लेकर आज तक मनुष्य की इस वक्तृत्व कला में असंख्य मोड़ आए, परिवर्तन-परिवद्र्धन हुए और इसी अनुपात में कहानी में भी परिष्कार हुआ। मनुष्य के वक्तृत्व कला की तरह ही कहानी भी उत्कर्ष के चरम बिंदु पर है। इसमें वह सब कुछ है जो आज समाज में, परिवार में और मनुष्य के जीवन में घटित होता है।

कहानी गद्य की लोकप्रिय महत्वपूर्ण विधा है। इसके माध्यम से कथाकार अपने मन के भावों को, अपने इर्द-गिर्द के परिवेश, माहौल, समाज में व्याप्त संगतियों, कुरीतियों, व्यभिचारों आदि के उद्रेक से, विभिन्न पात्रों के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। डॉ. मृदुला झा एक जानी-मानी साहित्यकार हैं। इन्होंने साहित्य की सभी विधाओं में रचना की हैं, किंतु मूलत: ये कथाकार हैं। समाज, परिवार और व्यक्ति के जीवन में जो कुछ घटित होता है उससे अपनी कहानियों का ताना-बाना बुनती हैं। इनकी कहानियों में सकारात्मक संबंधों की अभिव्यक्ति अपने मूर्त रूप में हुई है। 'एक सच ऐसा भी' इनका चौथा कहानी संकलन है। इसमें इक्कीस कहानियाँ संकलित हैं। इन कहानियों के अलग-अलग आयाम हैं जिनका वर्णन अलग-अलग घटनाओं के संदर्भ में किया गया है। समाज में प्रत्येक व्यक्ति एवं प्रत्येक परिवार की अलग-अलग स्थितियाँ होती हैं। कथाकार ने उन स्थितियों का सम्यक् निरूपण किया है। जिंदगी की असलियत से जुड़कर ही कहानी बनती है। इसलिए ऐसा कहना अनुचित नहीं होगा कि कहानी का ताना-बाना समाज और परिवार की निकटतम स्थितियों का बोध कराता है।

संकलन की पहली कहानी 'अपने पराए' में कथाकार ने बुजुर्ग के साथ व्यभिचार किए जाने की स्थिति को व्यक्त किया है, जो आज के समाज में आम बात हो गई है। शुची अपनी माँ की देखभाल अच्छी तरह से करती है। इसके चलते वह आजीवन कुँवारी रह जाती है। लेकिन उसके भैया-भाभी न तो माँ की ओर ध्यान देते हैं और न बहन की सुधि लेते हैं। शुची एक शिक्षिका है, उसकी काफी धन - संपत्ति है। लेकिन जब वह बीमार पड़ती है तब भी उसके भैया - भाभी उसकी ओर ध्यान नहीं देते हैं। शुची अपनी सारी जायदाद अपनी बहन के बेटे के नाम कर देती हैं। इलाज के लिए कोलकाता जाते समय शुची की मृत्यु हो जाती है। बहन का बेटा ही उसका अंतिम संस्कार करता है। उस समय भी उसके भैया-भाभी नहीं पहुँचते हैं। इस कहानी में आत्म केंद्रित स्वार्थी पुत्र की प्रवृत्तियों का चित्रण किया गया है।

---

एक सच ऐसा भी(कहानी-संग्रह)/ डॉ. मृदुला झा/ प्रकाशक-लक्की इंटरनेशनल, नई दिल्ली/ प्रकाशन वर्ष : 2019/ पृष्ठ : 144/ मूल्य : ₹495/-

'बहादुर आद्या', 'वह जीत गई', 'घुरनी का संकल्प', 'तपस्या पुरी हुई' आदि कहानियाँ दृढ़ संकल्प और नारी सशक्तिकरण का प्रतीक हैं। इन कहानियों में यह व्यक्त किया गया है कि अगर कोई नारी मन से कुछ करने की ठान ले तो उस कार्य में उसे अवश्य ही सफलता मिलती है। आद्या, घुरनी आदि ऐसी ही नारी पात्र हैं जो जीवन संघर्ष में विजयिनी होती हैं। 'बहादुर आद्या' एक मातृहीन बालिका की कहानी है, जिसका पालन-पोषण दादी की दुलार में होता है। उसके पिता विदेश में कार्य करते हैं। एक दिन बगीचे में खेलने के क्रम में गाँव के लड़के कमल से आहत होती है। अपनी अस्मत की तो रक्षा कर लेती है किंतु अपनी आँख खो बैठती है, जिसे उसके पिता विदेश में इलाज करा कर ठीक करा देते हैं। आद्या अपनी मेहनत और लगन से पढ़ाई कर प्रशासनिक पदाधिकारी बनती है। कमल को उसके किए की सजा नियति देती है। घुरनी भी ऐसी ही बहादुर लड़की की कहानी है। वह माँ का इलाज करा रहे नन्हकू बाबू की दरिंदगी का शिकार होती है। माँ के इलाज के लिए वह चुप रह जाती है, किंतु संकल्प लेती है कि वह पढ़-लिखकर नर्स बनेगी और गरीबों की सेवा करेगी। उसे अपने लक्ष्य की सिद्धि होती है। 'तपस्या पूरी हुई' उस माँ की कहानी है जो हवेली में ठकुराइन की सेवा कर अपने पुत्र बुचना को पढ़ा-लिखा कर एक बड़ा आदमी, इंजीनियर बनाती है। 'पाती', 'जया दीदी' अच्छे संस्कार की कहानियाँ हैं। जिस व्यक्ति में अच्छे संस्कार होते हैं, वे स्वयं तो सुखद जिंदगी व्यतीत करते ही हैं दूसरों को भी प्रेरित करते हैं। 'पाती' दो सहेलियों के बीच पत्र द्वारा वार्ता है, जिनकी भावनाओं में समयानुसार परिवर्तन होता है। अनु अपने पति एवं बच्चों के साथ महानगर में रहना पसंद करती है। जबकि उसके अच्छे विचार थे, आज बुजुर्गों के प्रति उसके विचार बदल गए हैं। वह अपनी सास को इतना हड़का कर रखती है कि वह उसके पास आना नहीं चाहती हैं परंतु सुप्रिया जबकि लंदन से पढ़कर आई है, फिर भी वह अपने सास-ससुर यहाँ तक कि दादी के साथ संयुक्त परिवार में खुशी-खुशी रहती है। उसे सब की सेवा में बहुत आनंद आता है और वह सभी का प्यार पाती है। आज संयुक्त परिवार की अहमियत समाप्त हो गई है, सुप्रिया संयुक्त परिवार की हिमायती है- "आज जब हर जगह संयुक्त परिवार के टूटने की चर्चा गर्म है, और करीब-करीब यह टूट भी रहा है ऐसे समय में वह इसका आनंद ले रही है" यह कहानी लोगों को अच्छी शिक्षा देती है। जया एक अच्छे संस्कार वाली लड़की और अच्छी शिक्षिका है। वह बच्चों को डाँट कर नहीं, बल्कि पुचकार कर उनकी समस्याओं की जानकारी प्राप्त करती है और उनका समाधान करती है। वह कहती है- "तुम हर मोड़ पर जब कभी दीदी को पुकारोगी, वह तुम्हारे सामने होगी। घबराओ नहीं। दी के बताए रास्ते पर चलोगी तो तुम्हें मंजिल अवश्य मिलेगी।" समाज को दिशा निर्देश देने वाली यह एक उत्कृष्ट कहानी है। 'प्यार की कीमत' एक दृढ़ संकल्पित नारी आंचल के अधूरे प्रेम की कहानी है, जिसे अपनी मंजिल तो मिलती है किंतु अपने प्यार की कीमत चुकानी पड़ती है। उसका मन कराह उठता है- "आज बहुत दिनों के बाद स्वप्निल की याद उसे टीस दे रही है और उसे प्यार की कीमत समझ में आ रही है। उसने अपने आप को धिक्कारा कि वह स्वप्निल के सच्चे प्रेम को क्यों न समझ पाई?"

'एक सच ऐसा भी' कहानी इस संकलन का शीर्षक, एक अद्भूत कहानी है। गाँव में एक ही दिन दो शादियाँ होती है। एक लड़की पढ़ी-लिखी है और दूसरी अनपढ़। एक पिता गाँव की पढ़ी-लिखी लड़की को दिखलाकर अपनी अनपढ़ लड़की राजकुमारी का विवाह एक सुयोग्य शिक्षित वर से कर देता है। राजकुमारी का पति इस कार्य से अनभिज्ञ रहता है। संयोग से दोनों दुल्हे बाहर शोच जाने के क्रम में मिलते हैं और आपस में बतियाते हैं तो पोल खुलता है और सच्चाई सामने आती है। किंतु सच्चाई जानकर भी राजकुमारी का पति अपनी निर्दोष बेपढ़ी पत्नी को प्रताड़ित न कर स्थिति से समझौता करता है उसे पढ़ाकर प्राइमरी स्कूल में शिक्षिका बना देता है और सुखपूर्वक, जीवन यापन करता है। ऐसी स्थिति में अधिकतर ससुराल वाले लड़की को प्रताड़ित करते है, किंतु राजकुमारी के पति ने ऐसा कुछ नहीं किया। थोड़ी सी सहनशीलता से जीवन नर्क होने से बच जाता है। यह सकारात्मक सोच की उत्कृष्ट कहानी है। 'कलसी' ग्रामीण परिवेश की कहानी है। इस

कहानी में कथाकर ने यह स्पष्ट किया है कि मनुष्य को उसके कर्मों का फल अवश्य मिलता है और वह भी इसी जन्म में। काकी अपनी बहू पर अत्यंत अत्याचार करती है, जिसका पति दूसरी शादी करके परिवार के साथ शहर में रहने लगता है काकी सूद का भी कार्य करती है। वह जरूरतमंद ग्रामीणों को सूद पर धन देती है और बदले में सोना, चाँदी, बर्तन आदि गिरवी रखती है। वह मनमाना सूद वसूल करती है। गरीब अपरा की माँ काकी के पास पाँच रुपए एक कलसी गिरवी रखकर लेती है। कुछ दिनों के बाद जब वह अपनी कलसी वापस लेने जाती है तो पाँच रुपए के बदले काकी उससे दस रुपए लेती है। कलसी की हालत बिल्कुल जर्जर हो चुकी थी इसलिए उसने कलसी को काकी के पास ही छोड़ दिया। कुछ समय पश्चात् काकी की भी स्थिति खराब होने लगी है। उसके शरीर में जगह-जगह पर घाव हो जाते हैं जिससे मवाद रिसने लगती हैं दुर्गंध के कारण कोई भी उसके पास फटकना नहीं चाहता है। काकी की भी हालात उसी कलसी जैसी हो जाती है- 'बेकार, बेजान, किसी काम का नहीं'। कथाकार ने यह स्पष्ट किया है कि जो व्यक्ति बुरा कर्म करता है उसका नतीजा बुरा ही होता है। 'साजिश' एक ऐसी कहानी है, जिसमें एक बेटी ही अपनी माँ से अहंकारवश साजिश कर उसे सम्मान समारोह में जाने से रोक लेती है, सिर्फ इसलिए कि उसकी माँ की महानता सिद्ध न हो सके। किंतु माँ अंतत: समारोह: स्थल पर पहुँचकर अपना प्रशस्ति पत्र प्राप्त कर बेटी की योजना को विफल कर देती है। "....शुभांगी ने माला, शॉल, प्रशस्ति पत्र एवं प्रतीक चिह्न लिए हुए मम्मी को देखा तो उसका मुँह आश्चर्य से खुला ही रह गया। यह देखकर अनन्या की माँ सरला भी मायुस हो गई, क्योंकि नतनी के साथ मिलकर उन्होंने भी साजिश की थी कि किसी तरह अनन्या सम्मान स्थल तक पहुँचकर सम्मानित न हो....।" इस कहानी में एक बेटी की माँ के प्रति ईर्ष्याभाव की अभिव्यक्ति हुई है।

'दिवानगी' में एक बड़े घर की राजपुत बेटी स्वर्णा ने घर से भाग कर दलित परिवार के लड़के रविंद्र से विवाह कर लिया। उसका घर तो बस गया क्योंकि रविंद्र के माता-पिता ने स्वर्णा को बहू के रूप में स्वीकार कर लिया, किंतु स्वर्णा के माता-पिता दुखी हो गए। यह एक अंतर्जातीय प्रेम विवाह का प्रतीक है, जो आजकल समाज में प्रमुख प्रचलन बन गया है। 'यह क्या किया?' शीर्षक कहानी में कथाकार ने समाज में फैली विसंगति को दर्शाया है। एक शराबी पिता ने अपने इकलौते बेटे को लोहे की छड़ से पीटकर उसकी नृशंस हत्या कर दी। वह पुत्र जो आज्ञाकारी, संस्कारी और कर्तव्यनिष्ठ था। 'नीलकंठ' कहानी में मनुष्य के सकारात्मक सोच की अभिव्यक्ति हुई है। इस कहानी में एक भले मानस पतिदेव चक्रधर अपनी पत्नी के कुकृत्य को जानकर भी उसे नजरअंदाज कर देता है ताकि जीवन नर्क न हो जाए। पत्नी की निष्ठा, धर्मपरायणता और मासूमियत से वह इतना अभिभूत हो गया कि "अपने हिस्से में आए विष को चुपचाप पीकर 'नीलकंठ' बन गया।" संकलन की अंतिम कहानी 'स्याह रात का सवेरा' आज के समाज में कन्या के साथ होने वाले दुर्व्यवहार की कहानी है। इसमें ब्रजकिशोर नामक लोभी पिता अपनी तीन पुत्रियों को पैसे के लालच में वृद्धों के हाथ बेच देता है। अंतिम पुत्री लक्ष्मी की जब बारी आती है तब उसका पुत्र वरुण समय पर पुलिस को बुलाकर उसकी रक्षा करता है। वरुण पुलिस से आग्रह करता है कि इस नीच हरकत के लिए पिता को कड़ी से कड़ी सजा दे ताकि भविष्य में कोई दूसरा पिता अपनी बेटी के साथ अनीति करने का साहस न कर सके।

कथाकार डॉ. मृदुला झा के कहानी संग्रह 'एक सच ऐसा भी' की सारी कहानियाँ बहुत उच्चकोटि की और समाज को अच्छी राह दिखलाने वाली हैं। आज के समाज में जितनी भी घटनाएँ देखने-सुनने में आती हैं उन्हींका चित्रण संकलन की कहानियों में हुआ है। यह संकलन सामाजिक एवं पारिवारिक परिवेश का दर्पण है। जन-जीवन-जगत से जुड़ी होने के नाते वास्तविकता से बेहद संश्लिष्ट प्रक्रिया पाठक को आद्यंत बाँधे रखने में सक्षम है। आकारगत लघुता के बावजूद कहानियाँ प्रभाव डालती हैं। मृदुला झा का कथाकार नारीजन्य संस्कारों की अभिव्यक्ति में अधिक रमता है। इनकी नारियाँ समाज की जीती-जागती चित्रावलियाँ हैं। ये समाज के विभिन्न वर्गों से आती हैं और नारी की संपूर्ण

प्रवृत्तियों-संवेदनाओं को उजागर करती हैं। संकलन की कहानियों के पात्र-चाहे वह बहादुर आद्या हो, संघर्षशील घुरनी या बुधनी हो, संयुक्त परिवार की हिमायती सुप्रिया हो, सास-ससुर की सेविका अंजना हो, मातृवत्सला शुचि हो, जांबाज पिता की पुत्री आंचल हो या फिर अपनी ही माँ से ईर्ष्या करती शुभांगी हो; सबकी सब भारतीय समाज की उपज हैं और नारीगत संस्कारों का पृष्ठपोषण करती हैं। कथाकार ने इनके चरित्रों का विन्यास भली प्रकार से किया है, जिससे ये आदर्श चरित्र बन गई हैं। संकलन की कहानियों की भाषा सरल एवं सुबोधगम्य है। भाषा की ताजगी, भावों की कमनीयता और कथ्य की सादगी से संग्रह की कहानियाँ अपना स्थायी प्रभाव छोड़ने में पूर्णरूपेण कामयाब हैं। भाषा भावों को बहाए चलती है और पाठक डूबता-उतराता रहता है। सकारात्मक सोच की ये कहानियाँ पाठकों के लिए सुरुचिपूर्ण होंगी, ऐसी ही कामना है।

– बी. 33, टाइप-IV, भूमितल, कृषि विहार, नई दिल्ली- 110048

❑❑❑

# पहाड़ी जीवन और प्रकृति सौंदर्य

**डॉ. केवल कृष्ण शर्मा**

कलम के धनी, साहित्य की हर विधा में पारंगत, जीवन की अनेकानेक बाधाओं से जूझने वाले साहित्यकार यशपाल शर्मा की यह नवकृति यात्रा संस्मरण 'आस्था के सोपान' अपने आप में जम्मू कश्मीर पर एक अद्‌भुत दस्तावेज है। जिसका लेखक स्वयं ही चश्मदीद गवाह है। इसमें निहित विषयों को एक ऐसा आधार प्रदान किया है; जिससे स्वयं ही पाठकों के सम्मुख जम्मू-कश्मीर के आयामों की परतें उजागर होती हैं। सर्वप्रथम पहाड़ी जीवन की बात करें तो कहना होगा कि पहाड़ी जीवन का दूसरा नाम 'प्रकृति' है। यहाँ प्रकृति बाहर नहीं बल्कि हर कश्मीरी का अभिन्न अंग दिखाई देती है। यह अभिन्नता ही यहाँ के जीवन को खूबसूरत बनाती है। इस यात्रा संस्मरण में मनुष्य और प्रकृति के एक होने का एहसास मिलता है।

पहाड़ों की प्रकृति में जन्मे-पले लेखक प्रतिदिन इस आनंदोत्सव का आनंद ग्रहण करता है। लेखक का बचपन और जवानी कश्मीर भूमि से सटे क्षेत्र बहादुरपुर गाँव जिला गुरदासपुर से जुड़ी है। इनकी स्मृतियों में दरियाओं के पानी लरजते दिखाई देते हैं। पहाड़ों की प्रकृति में रंगे होने के कारण इस प्रकृति को हाथ से छू कर महसूस किया है। यह इसलिए स्वाभाविक है, क्योंकि वह अपने, अपने समुदाय, अपने आसपड़ोस के जीवन परिवर्तनों को लक्षित करता चला जाता है। धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक और भौगोलिक परिदृश्यों को लिपिबद्‌ध करता हुआ भाव-विभोर हो जाता है।

यात्रा के प्रथम सोपान में बिना सिक्योरिटी के कठिन बाबा अमरनाथ यात्रा, यहाँ का बेगानापन, दहशत, लिद्‌दर नदी के पार्श्ववर्ती इस इलाके में यदि भारत सरकार है तो सेना की शक्ति के बल पर। सेना और सशक्त अर्ध सैनिक बल न हों तो इस यात्रा से सुरक्षित केवल बाबा अमरनाथ की कृपा ही लौटा सकती है। पहलगाम, चंदनबाड़ी, पिस्सुशिखर, शेषनाग, पंचतरणी, महागुनस पर्वत, भैरवघाटी से गुजरती हुई संगम पर पवित्र गुफा में हिमलिंग के दर्शन। यात्रा कहीं पैदल कहीं खच्चर से तय होती है। इन सभी का वर्णन बड़े विस्तृत-रोचक ढंग से हुआ है। इसमें आस्था की गूंज है, प्रकृति का वर्णन है, पर्यावरण की चिंता है, लेखक का चिंतन है, बेचारगी है, रिस्क और रोमांच है। शैव-दर्शन ऐतिहासिक संस्कृत विद्‌वान कल्हण, लार्ड माऊंटवेटन, डल झील के बारे में ज्ञान-वर्धक जानकारी देना नहीं भूले लेखक।

द्‌वितीय खंड में गुलमर्ग, ऋषि संप्रदाय का इतिहास खिलन मर्ग का प्राकृतिक सौंदर्य, शिव-मंदिर वहाँ के आम एवं खास जनों से वार्तालाप, स्थितियों... परिस्थितियों की जानकारी पाठकों की उत्सुकता को बढ़ाती है। मोनालिसा हाऊस ललेश्वरी के दर्शन, हजरत बल मस्जिद, देवी खीर भवानी, चश्मा शाही, मिनीझील, परीमहल, निशात बाग, हरि पर्वत, छठी पाताशाही गुरुद्‌वारा, वर्णन अपनी सृजनशील प्रक्रिया के माध्यम से संवेदनाओं को प्रखर, बहुस्तरीय व बहुआयामी बनाते हैं। इनके संदर्भ,

---

'आस्था के सोपान'/ डॉ. यशपाल शर्मा/ यात्रा संस्मरण/ प्रकाशक: दीपक पब्लिशर्ज़, माई-हीरागेट, जालंधर-144008/ प्रकाशन वर्ष : 2018/ पृष्ठ : 304/ मूल्य : ₹595/-

विषय और अभिव्यक्ति एवं शिल्प पाठक को बाँधे रखता है। इस यात्रा में लेखक का जज्बा, आस्था और विश्वास अतीत की स्मृतियों में अपना वजूद तलाशते दिखाई देते हैं। यात्रा-संस्मरण का विषय अंतर्मन की यात्रा है, जो इनको किशोरावस्था से प्रोढ़ावस्था तक ले जाता है। इनकी अनुभूतियों और एहसासों का निथरा हुआ सार प्रस्तुत करता है।

लेखक ने अपनी पैनी नज़र से विवस्तता नदी के इतिहास, काजीगुंड मार्किट का वर्णन आतंकवाद से पीड़ित लोगों की व्यथा, वहाँ के राजनैतिक परिदृश्य का खुलासा, यह जाना बूझा तथ्य कि वहाँ का हर आतंकवाद समर्थक अलगाववादी कश्मीरी संपन्न है। वह हिंदूस्तान और पाकिस्तान दोनों ओर कश्मीरियत की दलाली खाता है। इन्हीं लोगों ने घाटी से हिंदुओं, पंडितों को भगाकर उनके घरों, खेतों-बगीचों पर कब्जा किया है। यात्रा के रसास्वादन में ऐसी बातें हिचकी जैसा असर डालती हैं। दूसरी ओर, लेखक को कुछ लोग ऐसे भी मिलते हैं जो नि:स्वार्थ प्रेम के उदात्त और आत्मिक रूप की कामना करते दिखाई देते हैं ऐसी 'प्रकृति' ऐसे परिवेश के आदी व्यक्ति प्रकृति का हिस्सा बन जाते हैं। ये ही हैं वे लोग जो उस 'संस्कृति' को जीवित रखे हुए हैं, जिनके कसीदे उपदेश के रूप में अक्सर काढ़े जाते हैं। बिना उस प्रकृति को समझे। बकौल यशपाल शर्मा- "कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक भारत वर्ष में रहने वाले नागरिकों का जम्मू-कश्मीर की इंच-इंच भूमि पर समान अधिकार है। यह शांत रमणीय भू-भाग किसी जाति राजनैतिक दल विशेष न होकर सवा सौ करोड़ भारतवासियों का है। यह किसी व्यक्ति की, संप्रदाय की जागीर नहीं है। यह हिंदूस्तान का अभिन्न अंग है और रहेगा।"

यशपाल की इस यात्रा संस्मरण में दार्शनिक मुद्रा में जीवन की पहेली को सुलझाने का प्रयत्न करते दिखाई देते हैं। जम्मू-कश्मीर से संबंधित कुछ शाश्वत प्रश्न जिन्हें हर कोई अपनी तरफ से उठाता है; का समाधान खोजने को अंतर्मन से बाध्य किया है। साथ ही साथ बहुत सरल, सहज और मार्मिक अंदाज में सुसंप्रेषणीय बनकर जम्मू-कश्मीर के आमजन की तड़प ने संघर्ष से आवेष्टित, प्रतिशोध की चेतना से संपन्न होकर पाठकों के हृदय को स्पर्श कर विश्वास की लौ जगाने का यत्न किया है। कृति के माध्यम से वर्तमान समय की विभिन्न त्रासदियाँ, खंडित होते मानवमूल्य, समाप्त होती संवेदनाओं को बचाने में, आस्था-करुणा, भ्रातृत्व प्रेम बढ़ाने में प्रयासरत यत्नों का बखूबी निर्वहन किया है। मंदिरों के शहर जम्मू के धार्मिक स्थलों के दर्शन-पर्शन कर अनुभव और ज्ञान के चक्षुओं से विश्व के लोगों को उनके इतिहास, उत्थान-पतन, जम्मू के राजाओं का इतिहास, भूत-भविष्य एवं वर्तमान को देखते हुए ब्रह्मांड दृश्य से यह सारा सार निचोड़ा है। इस स्वर्ग-भूमि की ये प्रकृति-वृक्ष-जंगल ही मानव जीवन के आधार हैं। इन्हीं से सृष्टि का सौंदर्य है। यह सभी इसके अंग है। इनसे प्राप्त धन-धान्य, फल-फूल, वनस्पतियाँ आदि को ग्रहण करके ही तो शक्ति मिलती है। यह सब कुछ बर्बाद होते देख लेखक का कोमल मन पीड़ा से कराह उठता है।

कवि हृदय जो ठहरा। स्थानीय पहाड़ी, डोगरी एवं कश्मीरी शब्दों का प्रयोग इसको स्थानीय सीमा में बाँधने की क्षमता रखता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि किसी भी अँचल विशेष में रहने वाले लेखक की रचनाओं में उस अँचल के स्थानीय शब्दों और भाषा प्रयोगों का अपनी रचनाओं में इस्तेमाल एक स्वाभाविक स्थिति है। यही कारण है कि यशपाल जी अपने पाठकों को शनै:शनै सामाजिक, दैनिक व आर्थिक परिवेश में उतारते चले जाते हैं। जिससे पाठकों को वहाँ पृष्ठभूमि का ज्ञान होता चला जाता है। शैली की बात करें तो पाठक को अंत तक बाँधने में समर्थ हैं। पाठक घर बैठे ही इस यात्रा का आनंद लेंगे। ऐसा मेरा विश्वास है। इस नवकृति पर मेरी ओर से ढ़ेर सारी शुभकामनाएँ।

– 653, न्यू शास्त्री नगर, नज़दीक बस स्टैंड, पठानकोट, पंजाब

❑❑❑

# संपर्क सूत्र

1. डॉ. अनिल कुमार, ओ-27, सिविल टाउनशिप, राउरकेला, ओडिशा-769004
2. डॉ. संदीप रणभिरकर, सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, राजस्थान केंद्रीय विश्वविद्यालय, बांदरसिंदरी, किशनगढ़-305801, जिला-अजमेर (राजस्थान)
3. डॉ. चंद्रकांता किनरा, सी-29, सी. सी. कॉलोनी, दिल्ली-110007
4. श्री सुरेश धींगड़ा, 99, कादंबरी, सेक्टर-9, रोहिणी, दिल्ली-110085
5. डॉ. इंद्रदेव भोला इंद्रनाथ, Schoenfield Road, Riviere du Rampart, Mauritius
6. डॉ. एम. शेषन्, 'गुरु कृपा', प्लॉट 790, डॉ. रामास्वामी सलाइ, के. के. नगर (पश्चिम), चेन्नई-600078
7. आचार्य डॉ. केशवराम शर्मा, बी-59, सड़क नं. 3, उत्तरी छज्जू पुर, दिल्ली-110094
8. सुश्री प्रीति प्रकाश, शोधार्थी, हिंदी विभाग, तेजपुर विश्वविद्यालय, तेजपुर, असम
9. डॉ. अनुशब्द, असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, तेजपुर विश्वविद्यालय, तेजपुर, असम
10. प्रो. एम. वेंकटेश्वर, फ्लैट नं. 310, कंचरेला टॉवर्स, मुशीराबाद, हैदराबाद - 500020
11. सुश्री इंदिरा दाँगी, खेड़ापति हनुमान मंदिर के पास, सूद पेट्रोल पंप के पीछे, लाऊखेड़ी, एयरपोर्ट रोड, भोपाल (म. प्र.) 462030
12. डॉ. कृष्णा कदम, सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, अंकुशराव टोपे महाविद्यालय, जालना-431203, महाराष्ट्र
13. श्री इंद्र बहादुर गुरूङ, कालचिनी आउट डिवीजन, पोस्ट - कालचिनी जलपाइगढ़ी, डुवर्स-735217।
14. डॉ. वासुदेव सुनानी, कक्ष संख्या - 493-ए, कृषि भवन, मत्स्य पालन, पशुपालन और डेयरी विभाग, नई दिल्ली-110001
15. डॉ. अजय कुमार पटनायक, 'तपोवनम्', प्लॉट नं.- 1032/2402, प्रगति नगर, यूनिट-8, भुवनेश्वर-751003 (ओडिशा)
16. श्रीमती किरण कुमारी हाँसदाक, ग्राम : भटोंढ़ा दुर्गीटोला, पो. काठोन, थाना- पोरेयाहाट, जिला-गोड्डा-814153
17. डॉ. रीभा तिवारी, एस. बी. आई. कॉलोनी से पहले, फजलगंज, सासाराम, रोहतास (बिहार)-821115
18. श्री राधेश्याम बंधु, बी-3/ 163, यमुना विहार, दिल्ली-110053
19. सुश्री वर्षा सोलंकी, डी- 4, आयकर कॉलोनी, मजुरा गेट, सूरत, गुजरात
20. प्रो. राजनाथ भट्ट, भाषा विज्ञान विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी- 221005

21. डॉ. शकुंतला कालरा, एन. डी.- 57, पीतमपुरा, दिल्ली-110034

22. श्री आशा प्रसाद, बी. 33, टाइप-IV, भूमितल, कृषि विहार, नई दिल्ली- 110048

23. डॉ. केवल कृष्ण शर्मा, 653, न्यू शास्त्री नगर, नज़दीक बस स्टैंड, पठानकोट, पंजाब

❑❑❑

**केंद्रीय हिंदी निदेशालय**

**<u>भाषा पत्रिका की सदस्यता हेतु आवेदन पत्र</u>**

सेवा में,

निदेशक

केंद्रीय हिंदी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग

मानव संसाधन विकास मंत्रालय, पश्चिमी खंड-7, आर. के. पुरम - 110066

ई-मेल chdsalesunit@gmail.com

फोन नं. - 011 - 26105211 एक्सटैंशन नं. 201, 244

महोदय/महोदया

कृपया मुझे **भाषा** (द्वैमासिक पत्रिका) का एक वर्ष के लिए / पाँच वर्ष के लिए / दस वर्ष के लिए / बीस वर्ष के लिए दिनांक ..... से सदस्य बनाने की कृपा करें । मैं पत्रिका का वार्षिक / पंचवर्षीय / दस वर्षीय / बीस वर्षीय सदस्यता शुल्क ..... रुपए, निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली के पक्ष में नई दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय डिमांड ड्राफ्ट सं ..... दिनांक ..... द्वारा भेज रहा/ रही हूँ। कृपया पावती भिजवाएं ।

नाम : .....

पूरा पता : .....

.....

मोबाईल/दूरभाष : .....

ई-मेल : .....

संबद्धता / व्यवसाय : .....

आयु : .....

**पूरा पता जिस पर : .....**

**पत्रिका प्रेषित की जाए .....**

| **सदस्यता** | **शुल्क डाक खर्च सहित** |
|---|---|
| वार्षिक सदस्यता | रु. 125.00 |
| पंचवर्षीय सदस्यता | रु. 625.00 |
| दसवर्षीय सदस्यता | रु. 1250.00 |
| बीसवर्षीय सदस्यता | रु. 2500.00 |

डिमांड ड्राफ्ट **निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय के पक्ष में नई दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय होना चाहिए ।** कृपया ड्राफ्ट के पीछे अपना नाम एवं पूरा पता भी लिखे ।

**नाम एवं हस्ताक्षर**

**नोट: कृपया पते में परिवर्तन होने की दशा में कम से कम दो माह पूर्व सूचित करने का कष्ट करें ।**

पंजी संख्या. 10646/61
**ISSN 0523-1418**

भाषा (द्वैमासिक)
BHASHA-BIMONTHLY
पी. ई. डी. 305-4-2019
700

केंद्रीय हिंदी निदेशालय
उच्चतर शिक्षा विभाग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार
पश्चिमी खंड–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110066
www.chdpublication.mhrd.gov.in
प्रबंधक, भारत सरकार मुद्रणालय, रिंग रोड, मायापुरी, नई दिल्ली – 110064 द्वारा मुद्रित